प्रकाशक :

कुल-सचिव (रजिस्ट्रार),
सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ,
वल्लभविद्यानगर (गुजरात)

: मुख्य-वितरक :

वोरा एण्ड कंपनी पब्लिशर्स प्रा. लि.
३, राउन्ड बिल्डिंग
कालबादेवी रोड, बम्बई–२

प्रथम संस्करण : संवत् २०१७ वि०

मूल्य पाँच रुपया

मुद्रक :
गंगा मुद्रणालय,
वल्लभविद्यानगर (गुजरात)

प्रकाशकीय

गतवर्ष के प्रारंभ में उपकुलपति श्री बाबुभाई जशभाई पटेल की अध्यक्षता में विद्यापीठ के हिंदी-विभाग की ओर से 'आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ' विषय पर एक परिसंवाद की आयोजना की गई थी। परिसंवाद का माध्यम अंग्रेजी को छोड़कर सर्वत्र हिंदी था। विद्यापीठ से संबद्ध विभिन्न महाविद्यालयों के अध्यापकों ने ही भी भाषाओं का प्रतिनिधित्व किया। परिसंवाद कहाँ तक सफल हुआ, कहा तक उपयोगी सिद्ध हुआ, इसके बारे में उपकुलपति का प्राक्कथन पर्याप्त है। आर्थिक संकोच के कारण न तो दूसरे विद्यालयों से तत्तद् भाषाओं के विद्वानों को बुलाया जा सका, न भारत की सभी भाषाओं का प्रतिनिधित्व हो सका। किंतु इस परिसंवाद से दो लाभ तो अवश्य हुए हैं। एक तो यह कि अंग्रेजी को छोड़कर हिंदीतर सभी भाषाओं के वक्ताओं ने हिंदी में अपना भाषण दिया—या वक्तव्य पढ़ा, दूसरे भारत की आठ भाषाओं की कविता की प्रवृत्तियों का एकत्र तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत हुआ।

खेद है कि अनेक कारणों से इस पुस्तक के प्रकाशन में अनावश्यक विलंब होगया है और जैसा चाहते थे वैसा रूप भी हम इसे न दे सके। श्री ए. टी. शामजी के अन्यत्र चले जाने के कारण उर्दू की पांडुलिपि हमें प्राप्त न हो सकी।

विद्यापीठ का यह प्रथम प्रकाशन है। यदि यह पुस्तक भिन्न-भिन्न भाषाओं के काव्य-प्रेमियों के मन में दूसरी भाषाओं की कविता के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न कर सकी तो विद्यापीठ का यह आयोजन सफल समझा जायगा।

वल्लभविद्यानगर
संवत् २०१७ विक्रमीय

कांतिभाई अंबालाल अमीन
कुलसचिव
सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ के हिंदी-विभाग ने गत वर्ष दिनांक २७ जनवरी और ३ फर्वरी को एक संवाद की आयोजना की थी। उसी में दिये गये व्याख्यानों का यह समुच्चय है। इस परिसंवाद में अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, बंगाली, मराठी, राजस्थानी, संस्कृत और हिंदी भाषाओं की 'आधुनिक कविता की प्रवृत्तियों' का परिचय तद्भाषी तज्ज्ञों द्वारा दिया गया है। मुझे इस परिसंवाद में उपस्थित रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जिस गहराई से वक्ताओं ने अपने-अपने विषय के प्रत्येक पहलू की चर्चा की और न केवल आधुनिक कविता की प्रवृत्तियों से श्रोताओं को अवगत कराया प्रत्युत उस भाषा का आज पर्यन्त का विकास और समय समय पर जो काव्य-प्रवाह बदलते गये उनका भी स्पष्ट चित्र उपस्थित किया, उससे सब बहुत प्रभावित हुए। इसमें कई मौलिक दृष्टिकोण देखने और भावपूर्ण काव्य सुनने का अवसर मिला।

विद्यापीठ के इन अध्यापकों ने पर्याप्त परिश्रम कर अपने ज्ञान, चिंतन और कृतियों का लाभ सब श्रोताओं को दिया। यह कार्य इन लोगों ने इतनी सफलता-पूर्वक किया कि साहित्यिक सुरुचि रखने वाला जो समुदाय श्रोता के रूप में उपस्थित रहकर इस रसास्वाद से वंचित रहा उसे भी इन व्याख्यानों का लाभ पहुँचे और वे भी संक्षेप में इन भिन्न भिन्न भाषाओं के काव्य प्रवाहों से परिचित हों इस दृष्टि से इन सब व्याख्यानों को ग्रंथस्थ करने का निश्चय हुआ। इसी का परिणाम यह छोटा-सा किंतु रोचक और रसप्रद ग्रंथ है।

विद्यापीठ में विद्याभ्यास, संवाद, लेखनकला, उत्सव-समारोह आदि की व्यवस्था करने में हिंदी-विभाग के श्री पंत प्रभृति सदस्यगणों के उत्साह का परिचय बराबर मिलता रहा है। यह परिसंवाद उसी उत्साह का एक प्रतीक है। आशा है कि इन सब विद्याप्रेमी अध्यापकों की प्रवृत्तियों का लाभ विद्यापीठ के सभी छात्रगण एवं विद्यापीठ के बाहर के लोगों को भी मिलता रहेगा।

इसी प्रकार अंग्रेजी विभाग, अर्थशास्त्र विभाग, अध्यापन विभाग आदि की प्रवृत्तियों का भी लाभ समाज को मिल रहा है। अपेक्षा है कि इस विद्यापीठ के सभी विभागों के ज्ञान, अध्यापन, अनुसंधान आदि का लाभ विद्यापीठ की सीमा के बाहर के समुदाय को भी पर्याप्त रूप से मिलता रहेगा।

यह ग्रंथ विद्यापीठ का इस प्रकार का प्रथम प्रकाशन है। यह सौभाग्य की बात है कि यह प्रकाशन इस विद्यापीठ की शिक्षा और परीक्षा की मान्यभाषा हिंदी में हो रहा है और एक ऐसे विषय से यह शुभारंभ होता है कि जिसमें हिंदी किंवा अन्य भाषाओं के शिक्षार्थी न होते हुए भी सब लोग रसपान कर सकते हैं। इस कार्य में अग्रणी बनने के लिये मैं हिंदी विभाग को बधाई देता हूँ।

वल्लभविद्यानगर ऋषि पंचमी, वि. सं. २०१७	बाबुभाई जशभाई पटेल उपकुलपति सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ

आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ

(विषय-प्रवेश)

मोहनवल्लभ पंत

काव्य मानवजीवन की अनुभूतियों एवं चित्तवृत्तियों का व्यक्त स्वरूप है। मानवजीवन की ये अनुभूतियाँ अपने युगकी सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होती हैं। फलतः इनका प्रभाव कविता पर भी पड़ना अनिवार्य है। यही कारण है कि प्रत्येक देश और प्रत्येक भाषा की कविता अपने युग से—अपने युग की राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधियों से—प्रभावित हुए बिना नहीं रहती। प्रत्येक युग की कविता 'विषय' और 'रूप' दोनों में अपने युग से प्रभावित होने के कारण नये नये परिवर्तन लेकर हमारे सामने आती है। हमारा आज का विवेच्य विषय है 'आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ।' आज की कविता इस युग की गतिविधियों से कहाँ तक प्रभावित हुई है? भारत की भिन्न भिन्न भाषाओं की कविता पर आधुनिक हलचलों का प्रभाव किस प्रकार पड़ा है? इस दृष्टि से भारत की—और भारत के बाहर की भी—भिन्न भिन्न भाषाओं की कविता में कहाँ तक साम्य है और कितना वैषम्य? और क्यों? इस परिसंवाद द्वारा हमारा उद्देश्य आज के वक्ताओं से कुछ इसी प्रकार के प्रश्नों के उत्तर माँगना है।

यहाँ सबसे पहला प्रश्न उठता है आधुनिक-कविता के युग-निर्धारण का। सच बात तो यह है कि साहित्य में इस प्रकार के युगों के प्रारंभ या अवसान की कोई निश्चित तिथि बतलाई नहीं जा सकती। साहित्य के किसी भी युग में भिन्न भिन्न कविता-प्रवाह एक साथ प्रायः एक दूसरे के समानान्तर बहते हुए पाये जाते हैं। इनमें कभी एक धारा का प्रवाह वेगवान् होजाता है कभी दूसरे का। कविता की उस धारा में युग-विशेष में जो प्रवृत्ति विशेष रूप से लक्षित

होती है प्रायः उसी के नाम से उस युग का नामकरण किया जाता है—यद्यपि उस युग की कविताओं में अन्य प्रवृत्तियाँ भी पाई जाती हैं। हिंदी साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है। अतः कविता के 'आधुनिक युग' की सीमा निर्धारण करना—उसके उद्भव के तिथि का निर्णय करना—सहज बात नहीं। जो शृंगार-काल' कभी 'आधुनिक-काल' कहा जाता रहा होगा वह आज अपेक्षाकृत पुराना पड़ चुका है। और आज जिसे हम 'आधुनिक-काल' कह रहे हैं वह आज से एक शती पश्चात् 'प्राचीन-काल' की संज्ञा पाने का अधिकारी हो जायगा। फिर भी सुविधा के विचार से हम मोटे रूप में प्रथम विश्व-महायुद्ध से इस 'आधुनिक-युग' का प्रारंभ मान सकते हैं। उस विश्व-व्यापी युद्ध ने इस भू-मंडल के सभी देशों को एक दूसरे के अत्यन्त निकट ला दिया। उस युद्ध के बाद की हलचलों का प्रभाव प्रायः संसार की सभी भाषाओं की कविताओं में पाया जाता है। उस महायुद्ध ने विश्वभर में एक नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक और आर्थिक क्रांति को जन्म देकर उनमें आमूल परिवर्तन कर दिया है।

प्रथम महायुद्ध के बाद ही भारत में राष्ट्रीयता की लहर उठी। फलस्वरूप भारत की प्रायः सभी भाषाओं की कविता में राष्ट्रीय आन्दोलन के विविध स्वरूपों की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। तब स्वतंत्रता के लिये आत्मबलिदान करने और विदेशी शासन से संघर्ष कर लोहा लेने की भावना इतनी प्रबल थी कि तत्कालीन कविता में बराबर इसी का गर्जन सुनाई पड़ता है। द्वितीय महायुद्ध के समय स्वातंत्र्य-संग्राम ने और भी जोर पकड़ा। फलस्वरूप १९४२ की अगस्त क्रांति हुई। इसी बीच बंगाल का दुर्भिक्ष भी प्रशासनिक दुर्व्यवस्था का नग्न स्वरूप सामने लेकर आया। तत्कालीन कविता में इन घटनाओं की छाया स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। स्वराज्य प्राप्ति के पश्चात् कविता में एक ओर स्वतंत्रता का हर्षोन्माद दिखाई देता है तो दूसरी ओर

देश के विभाजन के फलस्वरूप क्रूरता का जो नग्न तांडव हुआ, दानवता की जो विभीषिका दिखाई पड़ी, उस की करुण चीत्कार भी स्पष्ट सुनाई पड़ती है। और आज ! आज भारत का मानव एक ओर देश के नव-निर्माण के लिये कटिबद्ध है—इसलिये उसकी कविता में उत्साह और क्रियाशीलता के साथ उज्ज्वल भविष्य का संकेत मिलता है; दूसरी ओर राजनीतिक दलबंदी के दलदल में फँसने तथा बेकारी, चोरबाज़ारी, घूसखोरी, लालफीताशाही आदि की चक्की में पिसने के कारण आज का कवि इन से बच निकलने के प्रयत्न में अपनी खीझ, कुढ़न, निराशा और वेदना की अभिव्यक्ति कर रहा है। वर्तमान शासन के प्रति असंतोषभावना की वृद्धि के कारण अब कवियों की वाणी में राष्ट्रीयता का स्वर रुद्ध हो गया है। एकीकरण के बाद देश पुनः छिन्नभिन्न होने की ओर है, इसलिये आज की कविता में कभी कभी प्रांतीय-संकीर्णता के विवादी स्वर भी गूँजने लगे हैं। बूढ़ा हिमालय अब भारत के प्रहरी के पद से त्यागपत्र दे रहा है, पड़ौसी मित्र शत्रु बन रहे हैं—यह तो अभी कल की बात है। कवियों की युग-स्पर्शी वाणी इस प्रभाव से भी अछूती नहीं रहने पाई है।

संपर्क और संनिकटता के कारण एक देश की कविता पर दूसरे देश की कविता का भी प्रभाव अवश्य पड़ता है। यही कारण है कि अंग्रेजी कविता का प्रभाव भारत की सभी भाषाओं की कविता पर पड़ता आया है—इस युग के पहले से ही। आज प्रकृति को आलंबन के रूप में जो यहाँ इतना अपनाया जाने लगा है उसे 'वर्ड्स्वर्थ' और 'शेली' का प्रभाव माना जाय तो कोई आपत्ति न होगी। इसी प्रकार अतुकांत कविता, छायावाद, मायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, आदि के रूप में 'आधुनिक कविता' के जो अनेक आधुनिक स्वरूप हमारे देखने में आते हैं उन पर क्रमशः 'ईट्स' से लेकर 'ईलियट' तक के अंग्रेजी के प्रमुख कवियों का प्रभाव स्पष्ट है।

इसी प्रकार भारत की अन्य भाषाओं की कविता ने भी एक-दूसरे को प्रभावित किया है। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के व्यापक प्रभाव से किसी भी भारतीय भाषा की कविता शायद ही बचने पाई होगी। आधुनिक युग के प्रारंभ में ही रवीन्द्र के प्रभाव ने हिंदी के जिन छायावादी कवियों को जन्म दिया उनमें से कुछ उत्कृष्ट कोटि के कवि आज स्पष्ट ही अरविंद-दर्शन से प्रभावित दिखलाई दे रहे हैं।

यह विज्ञान का युग है। विज्ञान के विकास के कारण आज हमारे समाज का क्षेत्र बहुत बड़ा हो गया है। हमारी अनुभूतियाँ हमारे ही प्रांत या देश की गतिविधियों से नहीं, संसार भर की परिस्थितियों से प्रभावित होती हैं। विज्ञान के विकास ने हमारे जीवन में एक नई गति ला दी है, जिसके फलस्वरूप हमारे जीवन की मान्यताओं में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। इन परिवर्तनों का भी आधुनिक कविता में कम प्रभाव नहीं पड़ा है।

मनःशास्त्र के अध्ययन ने—विशेषतः फ्रायड के मनोविश्लेषण ने—आज की कविता को एक मनःशास्त्रीय दृष्टि दी है। आज का कवि फ्रायड की इस मान्यता को ब्रह्मवाक्य मान कर चलता है कि 'मानव-मन की असंख्य कुंठाएँ कला में अपनी अभिव्यक्ति पाती हैं।' मानव के सभी कार्यकलाप उसके अवचेतन मन से प्रेरित होते हैं। इसीलिये आधुनिक कविता में आज प्रायः मन की कुंठाओं और दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति की जाने लगी है।

आज की कविता में एक और प्रभाव व्यापक रूप से दिखाई पड़ता है और वह है मार्क्सवादी सामाजिक अर्थव्यवस्था का। प्रगतिवादी कविता में वर्ग-संघर्ष का स्वर इसी मार्क्सवादी विचारधारा का परिणाम है।



इन शब्दों में यहाँ संक्षेप में एक ओर इस परिसंवाद की सीमा का निर्धारण किया जा रहा है और दूसरी ओर वक्ताओं के विषय-विवेचन की ओर कुछ संकेत। अगले कुछ व्याख्यानों में प्रत्येक वक्ता द्वारा अपने अपने विषय का समुचित प्रतिपादन कर श्रोताओं के सामने इस बात का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है कि अमुक भाषा की 'आधुनिक कविता' अपने समय की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों से, अन्य भाषाओं के संपर्क से और विज्ञान-मनोविज्ञान की प्रगति से कहाँ तक प्रभावित हुई है? इन सब का 'वस्तु'-विवेचन में ही नहीं कविता के 'रूप' में भी कहाँ तक प्रभाव पड़ा है?



आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ

(अंग्रेजी)

श्री प्रभाचंद्र जैन, एम. ए.

अनुवादक :—श्री नागेन्द्रनाथ उपाध्याय, एम. ए.

मैंने इस निबंध में अंग्रेज आलोचक 'जे इसैक्स' द्वारा निर्दिष्ट दो सिद्धान्तों का अनुसरण किया है—प्रथम, प्रवृत्तियों को ऐतिहासिक संदर्भ में इसप्रकार उपस्थित किया है कि वे काव्यक्रांति में प्रवाहित अन्तर्धाराओं की रूपरेखा उपस्थित कर सकें। दूसरे, कवि और कविता का पृथक्-पृथक् आलोचन किया गया है—क्योंकि कवि और उसकी एक-दो कविताओं का आलोचन करने के विषय में 'डा० जानसन' ने कहा था कि एक-दो पंक्तियों को उपस्थित कर शेक्सपीयर की कविता की महानता सिद्ध करनेवाले आलोचक ग्रीक नाटक के उस नायक की तरह हैं जो अपना मकान बेचने के लिये नमूने की एक ईंट जेब में लिये फिरा करता था।

नवंबर १९५९ में 'लन्दन मेगेजीन' द्वारा 'आधुनिक कविता' पर संयोजित एक परिसंवाद में कवि 'हैलोवे' ने कवि और कविता की वर्तमान मूल समस्या प्रस्तुत की है। 'कवि क्या है?—एक भविष्य-वक्ता ऋषि या एक सामाजिक आलोचक? अर्थात् कविता का जीवन-तत्त्व क्या होना चाहिये?—आदर्शवाद या यथार्थवाद? क्या वह मनुष्य की उन्नतर भावनाओं को आकर्षित कर अपनी कविता में एक आदर्श विश्व का निर्माण करे अथवा वह देश और काल में सीमित होकर उसके दोषों का उपहास करते हुए या उन पर रोते हुए समाज का अन्तःकरण बना रहे? क्या कविता सौन्दर्य की उपासना है या सामाजिक आलोचना अथवा राजनीतिक प्रचार? इसके अतिरिक्त एक और विराट् प्रश्न अभिव्यक्ति के टेकनीक के विषय में है। क्या काव्य शाश्वत नियमों के समूह से नियंत्रित सौन्दर्यमय और संगीतात्मक शब्द-रचना है? अथवा क्या काव्य आलंकारिक रूपकों का परित्याग

कर सामान्य बोलचाल की भाषा और उसके मुहावरों का प्रयोग कर सकता है? कवि शब्द और विचार का समन्वय करे या कविता के नियमों और विधानों की रक्षा के हेतु सचाई (सिंसियारिटी) का बलिदान करे? विगत पचास वर्षों से आधुनिक अंग्रेजी कविता इन्हीं प्रश्नों का समाधान ढूँढने के लिये संघर्ष कर रही है।

'जॉर्जियन' कविता (सन् १९१४ तक की कविता):

'जॉर्जियन' कवियों का लक्ष्य कविता में नवीन शक्ति और नवीन सौन्दर्य लाना था; किन्तु वे उत्तम परंपराओं को उज्जीवित करते हुए भी उनमें किसी प्रकार का विक्षोभ उत्पन्न करना नहीं चाहते थे। इस उद्देश्य से उन लोगों ने वन-उपवन, सरोवर, पुष्प आदि से प्रेरणा लेकर जो कविता लिखी उससे वे इंग्लैंड के नैसर्गिक प्राकृतिक सौन्दर्य को भव्य रूप प्रदान कर सके। उन लोगों ने केवल नागरिक जीवन और मुक्त प्रकृति प्रदेश के जीवन के अन्तर्विरोध को दिखाया। किंतु वे नवीन औद्योगिक विश्व को उसके वास्तविक अर्थ में नहीं पहचान सके और न वे आधुनिक औद्योगिक विश्व के भावी मानसिक और आत्मिक संघर्षों को ही पहचान सके। उन कवियों को इसके लिये दोषी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे कवि भी उस समय वैसा ही सोचते और अनुभव करते थे जैसा उस समय का युगसमाज करता था। इसी दृष्टि को ध्यान में रख कर 'इलियट' ने कहा है कि अंग्रेजी कविता सदैव ही समकालीन कविता रही है। 'जॉर्जियन' कविता के अध्ययन से यह बात सच मालूम पड़ती है।

संकेतवाद (सिम्बॉलिज्म):

यद्यपि इस विशेष वाद के लिये हिन्दी में प्रतीकवाद शब्द ही व्यवहृत होता रहा है तथापि आगे के विवेचन को ध्यान में रखने पर 'संकेतवाद' शब्द ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

मनोविज्ञान का प्रभाव:

मनोविश्लेषण के अन्वेषक 'सिगमंड फ्रायड' ने कहा था कि मुख्य

(अनकांशस) मन का प्रकाशन संकेतों में होता है। उनके अनुसार संकेत दमित विचारों और भावनाओं के घनीभूत रूप हैं। इन संकेतों में अतृप्त इच्छाएँ गड़ी पड़ी रहती हैं। इस सिद्धान्त का प्रयोगात्मक प्रमाण यह है कि जब कोई मनुष्य किसी के द्वारा अपने इन संकेतों पर विचारों को मुक्तभाव से छोड़ देने के लिये प्रेरित किया जाता है, तब वे विचार परस्पर संबद्ध भावों एवं छायाओं को इस प्रकार उद्घाटित करते हैं कि अंत में हम मूल दमित और ठुकराई हुई इच्छा को जान लेते हैं। संकेत ऐसी इच्छाओं का एक ढाँचा है। युग ने सुप्त चेतन को न तो अतृप्त वासनाओं का गोबर का ढेर माना है न दमित इच्छाओं का कूड़ाखाना ही स्वीकार किया है। अपितु, उनके अनुसार उसका निर्माण जातीय परंपराओं और संस्कृतियों से प्राप्त उन स्मृतियों से होता है जिन्हें 'आर्चटाइप्स' कहा जाता है। संकेत उन सांस्कृतिक पौराणिक प्रसंगों को प्रतिरूपित करते हैं जो मनुष्य के मन में बहुत गहराई में एकत्र रहते हैं। संकेत घनीभूत विचार होते हैं, इसलिये उनमें इतनी महान शक्ति होती है कि कविता में प्रयुक्त होने पर वे मानस की पूरी गहराइयों में हलचल पैदा करने में समर्थ होते हैं। वे संकेत पाठक की विचार-परंपरा को उत्तेजित करने तथा उसके स्वनिर्मित विचित्र एवं अनिर्वचनीय आनन्दमय विश्व के कपाट खोलने में समर्थ होते हैं। फ्रायड ने अपने 'इंटरप्रिटेशन आव ड्रीम्स' नामक ग्रंथ में संकेतों का मनोवैज्ञानिक अर्थ निरूपण किया है।

योरोपीय प्रभावः

इस प्रकार योरोप में जो संकेतवादी धारा प्रवाहित हुई वह मूलतः छायावादी थी। यह संकेतवाद युग के उस वैज्ञानिक यथार्थवाद का प्रतिवाद था जो परंपरागत धर्म में विश्वास खो चुका था। उस युग को, सत्य की खोज में, धर्म के स्थान पर किसी अन्य आदर्श को प्राप्त करने की आशा थी। संकेतवाद शब्दों के एक नये

संसार की सृष्टि करना चाहता था जो ऐंद्रिक जगत् की अपेक्षा अधिक यथार्थ हो। विज्ञान ने युग के ईसाई विश्वासों की धज्जी उड़ा दी थी। अपने आदर्श की खोज में संकेतवादियों ने आदर्श के रूप में सौंदर्य की उपलब्धि की। अतः हम यह कह सकते हैं कि संकेतवाद सौन्दर्यवाद का एक रहस्यवादी रूप (मिस्टिकल फार्म आफ एस्थिटिसिज्म) है।

फ्रांसीसी कवि 'मैलार्मे' के इन शब्दों में संकेतवाद की प्रवृत्ति और उसका तंत्र (टेक्नीक) इस प्रकार समझा जा सकता है—"मेरा उद्देश्य काव्य की विषयवस्तु को, अभिधा या व्यंजना की सहायता के बिना ही केवल छाया के रूप में सांकेतिक शब्दों से व्यक्त करना है।" संकेतवादी कवि काव्य को सूक्ष्म, अस्पष्ट और क्षणिक भावमुद्राओं की संगीतमयी सृष्टि मानते थे। उन लोगों ने शब्दसंगीत की निर्देशात्मकता और परस्पर संबद्ध विचारों के माध्यम से सम्पन्न होनेवाली निर्देशन-क्रिया (सजेशन थाई मीन्स आव एसोसियेशन आव आइडियाज) को महत्व दिया। 'मैलार्मे' ने कहा था कि काव्य की विषयवस्तु को थोड़ा-थोड़ा कर क्रमशः प्रकाशित करने से जितना आनंद आता है, उसका अधिकांश भाग, उस विषयवस्तु को एकमात्र अभिधा से प्रकाशित कर देने से नष्ट हो जाता है। इसीलिये कविता को सदैव एक पहेली के रूप में ही रहना चाहिये।

अंग्रेजी कविता में संकेतवाद का सर्वप्रथम प्रवर्तन 'यीट्स' और 'इलियट' ने किया था। किंतु अंग्रेजी और फ्रांसीसी संकेतवाद में पर्याप्त अंतर है। 'यीट्स' के मतानुसार कविता आध्यात्मिक संसार के साथ संबंध स्थापित करने का एक साधन है। उसने अपने संकेतों का उपयोग अपने भावोद्रेगों की अभिव्यक्ति के लिये किया; किंतु 'मैलार्मे' का संबंध शुद्ध सौन्दर्यानुभूति से था। धर्म और पुराण 'यीट्स' के लिये संकेतों के कोश थे। उसकी दृष्टि में जीवन जातीय परंपराओं और स्मृतियों का एक भंडार है। कवि इसमें संकेतों को

(अनकांशस) मन का प्रकाशन संकेतों में होता है। उनके अनुसार संकेत दमित विचारों और भावनाओं के घनीभूत रूप हैं। इन संकेतों में अतृप्त इच्छाएँ गड़ी पड़ी रहती हैं। इस सिद्धान्त का प्रयोगात्मक प्रमाण यह है कि जब कोई मनुष्य किसी के द्वारा अपने इन संकेतों पर विचारों को मुक्तभाव से छोड़ देने के लिये प्रेरित किया जाता है, तब वे विचार परस्पर संबद्ध भावों एवं छायाओं को इस प्रकार उद्घाटित करते हैं कि अंत में हम मूल दमित और ठुकराई हुई इच्छा को जान लेते हैं। संकेत ऐसी इच्छाओं का एक ढाँचा है। युग ने सुप्त चेतन को न तो अतृप्त वासनाओं का गोबर का ढेर माना है न दमित इच्छाओं का कूड़ाखाना ही स्वीकार किया है। अपितु, उनके अनुसार उसका निर्माण जातीय परंपराओं और संस्कृतियों से प्राप्त उन स्मृतियों से होता है जिन्हें 'आर्च टाइप्स' कहा जाता है। संकेत उन सांस्कृतिक पौराणिक प्रसंगों को प्रतिरूपित करते हैं जो मनुष्य के मन में बहुत गहराई में एकत्र रहते हैं। संकेत घनीभूत विचार होते हैं, इसलिये उनमें इतनी महान् शक्ति होती है कि कविता में प्रयुक्त होने पर वे मानस की पूरी गहराइयों में हलचल पैदा करने में समर्थ होते हैं। वे संकेत पाठक की विचार-परंपरा को उत्तेजित करने तथा उसके स्वनिर्मित विचित्र एवं अनिर्वचनीय आनन्दमय विश्व के कपाट खोलने में समर्थ होते हैं। फ्रायड ने अपने 'इंटरप्रिटेशन आव ड्रीम्स' नामक ग्रंथ में संकेतों का मनोवैज्ञानिक अर्थ निरूपण किया है।

योरोपीय प्रभावः

इस प्रकार योरोप में जो संकेतवादी धारा प्रवाहित हुई वह मूलतः छायावादी थी। वह संकेतवाद युग के उस वैज्ञानिक यथार्थवाद का प्रतिवाद था जो परंपरागत धर्म में विश्वास खो चुका था। उस युग को, सत्य की खोज में, धर्म के स्थान पर किसी अन्य आदर्श को प्राप्त करने की आशा थी। संकेतवाद शब्दों के एक नये

संसार की सृष्टि करना चाहता था जो ऐंद्रिक जगत् की अपेक्षा अधिक यथार्थ हो। विज्ञान ने युग के ईसाई विश्वासों की धज्जी उड़ा दी थी। अपने आदर्शों की खोज में संकेतवादियों ने आदर्श के रूप में सौंदर्य की उपलब्धि की। अतः हम यह कह सकते हैं कि संकेतवाद सौन्दर्यवाद का एक रहस्यवादी रूप (मिस्टिकल फार्म आफ एस्थिटिसिज्म) है।

फ्रांसीसी कवि 'मेलार्मे' के इन शब्दों में संकेतवाद की प्रवृत्ति और उसका तंत्र (टकनीक) इस प्रकार समझा जा सकता है—"मेरा उद्देश्य काव्य की विषयवस्तु को, अभिधा या व्यंजना की सहायता के बिना ही केवल छाया के रूप में सांकेतिक शब्दों से उत्पन्न करना है।" संकेतवादी कवि काव्य को सूक्ष्म, अस्पष्ट और क्षणिक भावमुद्राओं की संगीतमयी सृष्टि मानते थे। उन लोगों ने शब्दसंगीत की निर्देशात्मकता और परस्पर संबद्ध विचारों के माध्यम से सम्पन्न होनेवाली निर्देशन-क्रिया (सजेशन बाई मीन्स आव एसोसियेशन आव आइडियाज) को महत्व दिया। 'मेलार्मे' ने कहा था कि काव्य की विषयवस्तु को थोड़ा-थोड़ा कर क्रमशः प्रकाशित करने से जितना आनंद आता है, उसका अधिकांश भाग, उस विषय-वस्तु को एकसाथ अभिधा से प्रकाशित कर देने से नष्ट हो जाता है। इसीलिये कविता को सदैव एक पहेली के रूप में ही रहना चाहिये।

अंग्रेजी कविता में संकेतवाद का सर्वप्रथम प्रवर्तन 'यीट्स' और 'इलियट' ने किया था। किंतु अंग्रेजी और फ्रांसीसी संकेतवाद में पर्याप्त अंतर है। 'यीट्स' के मतानुसार कविता आध्यात्मिक संसार के साथ संबंध स्थापित करने का एक साधन है। उसने अपने संकेतों का उपयोग अपने भावोद्वेगों की अभिव्यक्ति के लिये किया; किंतु 'मेलार्मे' का संबंध शुद्ध सौन्दर्यानुभूति से था। धर्म और पुराण 'यीट्स' के लिये संकेतों के कोश थे। उसकी दृष्टि में जीवन जातीय परंपराओं और स्मृतियों का एक भंडार है। कवि इससे संकेतों को

(अनकांशस) मन का प्रकाशन संकेतों में होता है। उनके अनुसार संकेत दमित विचारों और भावनाओं के घनीभूत रूप हैं। इन संकेतों में अतृप्त इच्छाएँ गड़ी पड़ी रहती हैं। इस सिद्धान्त का प्रयोगात्मक प्रमाण यह है कि जब कोई मनुष्य किसी के द्वारा अपने इन संकेतों पर विचारों को मुक्तभाव से छोड़ देने के लिये प्रेरित किया जाता है, तब वे विचार परस्पर संबद्ध भावों एवं छायाओं को इस प्रकार उद्घाटित करते हैं कि अंत में हम मूल दमित और ठुकराई हुई इच्छा को जान लेते हैं। संकेत ऐसी इच्छाओं का एक ढाँचा है। युग ने सुप्त चेतन को न तो अतृप्त वासनाओं का गोचर का ढेर माना है न दमित इच्छाओं का कूड़ाखाना ही स्वीकार किया है। अपितु, उनके अनुसार उसका निर्माण जातीय परंपराओं और संस्कृतियों से प्राप्त उन स्मृतियों से होता है जिन्हें 'आर्च-टाइप्स' कहा जाता है। संकेत उन सांस्कृतिक पौराणिक प्रसंगों को प्रतिरूपित करते हैं जो मनुष्य के मन में बहुत गहराई में एकत्र रहते हैं। संकेत घनीभूत विचार होते हैं, इसलिये उनमें इतनी महान् शक्ति होती है कि कविता में प्रयुक्त होने पर वे मानस की पूरी गहराइयों में हलचल पैदा करने में समर्थ होते हैं। वे संकेत पाठक की विचार-परंपरा को उत्तेजित करने तथा उसके स्वनिर्मित विचित्र एवं अनिर्वचनीय आनन्दमय विश्व के कपाट खोलने में समर्थ होते हैं। फ्रायड ने अपने 'इंटरप्रिटेशन आव ड्रीम्स' नामक ग्रंथ में संकेतों का मनोवैज्ञानिक अर्थनिरूपण किया है।

योरोपीय प्रभावः

इस प्रकार योरोप में जो संकेतवादी धारा प्रवाहित हुई वह मूलतः छायावादी थी। यह संकेतवाद युग के उस वैज्ञानिक यथार्थवाद का प्रतिवाद था जो परंपरागत धर्म में विश्वास खो चुका था। उस युग को, सत्य की खोज में, धर्म के स्थान पर किसी अन्य आदर्श को प्राप्त करने की आशा थी। संकेतवाद शब्दों के एक नये

प्रतिमावादी कविता (इमेजिस्ट पोएट्री):

अंग्रेज आलोचक 'ह्यूसैक्स' के मतानुसार प्रतिमावादी काव्य एक ऐसा उपेक्षित साहित्य है जिसके विषय में चर्चा तो बहुत हुई है किंतु पढ़ा कम गया है। वस्तुतः उसका पढ़ना आसान भी नहीं है। प्रतिमावादी आंदोलन का आरंभ १९०८ में 'टी० ई० ह्यूम' के हाथों एक कविगोष्ठी की स्थापना से हुआ। ह्यूम ने अपना यह सिद्धान्त स्थापित किया कि प्रत्येक युग की अपनी भिन्न एवं परिवर्तित जीवनदृष्टि होती है जिसे प्रकट करने के लिये काव्य के एक नवीन छंद (वर्स फार्म) की आवश्यकता होती है। ह्यूम अस्पष्ट स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज्म) के विरोधी थे। वे फ्रांस में आविष्कृत 'मुक्त छंद' (वर्स लिब्रे = फ्री वर्स) से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने बतलाया कि वस्तुओं को संकुचित वृत्ति से देखने के कारण अंग्रेजी कविता की हानि हुई है। किंतु केवल एक नवीन लय से ही काम नहीं चल सकता था। इसकी लेते हुए पाठक को चौंका देनेवाली नवीन उपमाओं और नवीन रूपकों की आवश्यकता थी। ह्यूम के अनुसार प्रतिमाओं को स्पष्ट, संक्षिप्त एवं निर्दोष होना चाहिये जिससे वे मानसचक्षु के समक्ष एक स्पष्ट आकृति या चित्र उपस्थित कर सकें। प्रतिमावादी काव्य की लय अभिव्यक्त किये जानेवाले भावोद्वेगों की विभिन्न छायाओं के अनुरूप होनी चाहिये। कविता में एक प्रकार की पक्वता (हार्डनेस) अपेक्षित है।

'एज्रा पाउण्ड' ने इस आन्दोलन को एक संगठित रूप प्रदान कर इसे 'प्रतिमावाद' नाम दिया। उन्होंने एक मंडल संगठित किया और 'काव्य में प्रतिमावाद' के लिये नियम बनाए:—

१—आत्मपरक अथवा विषयपरक वस्तुओं का काव्य में प्रत्यक्ष वर्णन तथा विषय के चयन में स्वतंत्रता होनी चाहिए।

२—ऐसे शब्द का किसी भी प्रकार प्रयोग नहीं होना चाहिये जो वाच्यवस्तु को प्रस्तुत करने में काम न आवे अर्थात् काव्य में साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग हो। शब्द की आलंकारिकता की अपेक्षा उसकी उपयुक्तता पर विशेष ध्यान होना चाहिए।

ग्रहण कर वर्तमान जीवन को व्यक्त कर सकता है। वह 'कला कला के लिये' के सिद्धान्त को मानता था। उसके मत से कला को अपने युग के प्रभाव और जीवन से मुक्त रहना चाहिये। उसने एक स्थान पर लिखा है कि भविष्य में कविता जीवन की आलोचना न होकर जीवनरहस्य का प्रकटीकरण होती जायेगी। बाद में 'यीट्स' के इस अभिमत में परिवर्तन हुआ। वह स्वप्नदर्शी से यथार्थवादी और यथार्थवादी से उत्कट अध्यात्मवादी संत बन गया। उसके इस परिवर्तन के विषय में एक आलोचक कहता है—"यीट्स ने पौराणिक वस्तु को अलंकृत रूप में उपस्थित करने के बदले सामान्य जीवन का नग्न (यथार्थ) चित्रण करने में अधिक आनंद का अनुभव किया।"

'टी. एस. इलियट' संकेतवाद को रूपकों के द्वारा जटिल विचार संगति (काम्प्लिकेटेड एसोसियेशन आफ आइडियाज) के संप्रेषण का एक प्रयत्न मानते हैं। उन के मत से मनोवैज्ञानिक सूत्र 'जटिल विचार-संगति' का चित्रण करने में रूपक ही समर्थ हो सकते हैं। 'इलियट' पर 'फ्रायड' का प्रभाव अधिक है। आधुनिक कविता में प्रेषणीयता (कम्युनिकेशन) की जटिलता और अस्पष्टता (आब्सक्योरिटी) की दो कष्टकर परंपराओं का आरंभ यहीं से होता है। 'इलियट' का कथन है कि सच्ची कविता समझने के पूर्व ही हृदय को स्पर्श करती है। इसलिये वे कविता में ऐसी भव्य भावप्रतिमाओं की उद्भावना करते हैं जो सुप्तचेतना की गहराइयों में उतर सके। कविता की हृदयस्पर्शिता के लिये 'इलियट' बुद्धि को नहीं अपितु भावात्मकता को महत्व देते हैं। क्यों कि उनके मत से काव्य दर्शनशास्त्र अथवा धर्मशास्त्र का स्थानापन्न नहीं हो सकता।

'यीट्स' और 'इलियट' ने आधुनिक अंग्रेजी कविता की नींव डालते हुए यही प्रश्न काव्यजगत् के सामने प्रस्तुत किया है कि क्या कलात्मक तंत्र (टेकनीक) के द्वारा समकालीन जीवन के चित्तरहस्य का संप्रेषण किया जा सकता है?—क्या नवीन लय और नवीन भाव-प्रतिमाएँ (इमेजरी) इस संप्रेषण में समर्थ हो सकती हैं?

प्रतिमावादी कविता (इमेजिस्ट पोएट्री):

अंग्रेज आलोचक 'ईसैक्स' के मतानुसार प्रतिमावादी काव्य एक ऐसा उपेक्षित साहित्य है जिसके विषय में चर्चा तो बहुत हुई है किंतु पढ़ा कम गया है। वस्तुतः उसका पढ़ना आसान भी नहीं है। प्रतिमावादी आंदोलन का आरंभ १९०८ में 'टी० ई० ह्यूम' के हाथों एक कविगोष्ठी की स्थापना से हुआ। ह्यूम ने अपना यह सिद्धान्त स्थापित किया कि प्रत्येक युग की अपनी भिन्न एवं परिवर्तित जीवनदृष्टि होती है जिसे प्रकट करने के लिये काव्य के एक नवीन छंद (वर्स फार्म) की आवश्यकता होती है। ह्यूम अस्पष्ट स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज्म) के विरोधी थे। वे फ्रांस में आविष्कृत 'मुक्त छंद' (वर्स लिब्रे = फ्री वर्स) से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने बतलाया कि वस्तुओं को संकुचित वृत्ति से देखने के कारण अंग्रेजी कविता की हानि हुई है। किंतु केवल एक नवीन लय से ही काम नहीं चल सकता था। झपकी लेते हुए पाठक को चौंका देनेवाली नवीन उपमाओं और नवीन रूपकों की आवश्यकता थी। ह्यूम के अनुसार प्रतिमाओं को स्पष्ट, संक्षिप्त एवं निर्दोष होना चाहिये जिससे वे मानसचक्षु के समक्ष एक स्पष्ट आकृति या चित्र उपस्थित कर सकें। प्रतिमावादी काव्य की लय अभिव्यक्त किये जानेवाले भावोद्वेगों की विभिन्न छायाओं के अनुरूप होनी चाहिये। कविता में एक प्रकार की परुषता (हार्डनेस) अपेक्षित है।

'एजरा पाउण्ड' ने इस आन्दोलन को एक संगठित रूप प्रदान कर इसे 'प्रतिमावाद' नाम दिया। उन्होंने एक मंडल संगठित किया और 'काव्य में प्रतिमावाद' के लिये नियम बनाए:—

१—आत्मपरक अथवा विषयपरक वस्तुओं का काव्य में प्रत्यक्ष वर्णन तथा विषय के चयन में स्वतंत्रता होनी चाहिए।

२—ऐसे शब्द का किसी भी प्रकार प्रयोग नहीं होना चाहिये जो काव्यवस्तु को प्रस्तुत करने में काम न आये अर्थात् काव्य में साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग हो। शब्द की आलंकारिकता की अपेक्षा उसकी उपयुक्तता पर विशेष ध्यान होना चाहिए।

३—नवीन भावमुद्राओं की अभिव्यक्ति के लिये नवीन लयों की सृष्टि और परंपरामुक्त छंदों के स्थान पर नवीन मुक्त छंद (वर्स लिब्रे) का प्रयोग होना चाहिए।

४—कविता में अस्पष्ट और संदिग्ध चित्र की अपेक्षा स्पष्ट और मूर्त प्रतिमाएँ प्रस्तुत करना अधिक वांछनीय है।

इनके अतिरिक्त 'ऑल्डिंग्टन', 'जे. डी. फ्लेचर', 'डी. एच. लॉरेंस', 'एमिलॉवेल' आदि भी ख्यातिप्राप्त प्रतिमावादी कवि थे।

प्रतिमावादी स्कूल की विशिष्टता यह है कि उसने अंग्रेजी के कवियों को परिवर्तनशील संसार के प्रति संवेदनशील बना दिया। *'एज़रा पाउण्ड' ने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया है कि* काव्यप्रेरणा को कीट्स और टेनिसन के अध्ययन तक ही सीमित न कर उसे विश्व की समस्त कविता के अध्ययन से नवीन बनाया जाय। प्रतिमावाद संकेतवाद के अस्पष्ट शब्दचित्रों का विरोधी है। संकेतवादियों के सौंदर्यवाद और आदर्शवाद के विपरीत ये यथार्थवादी हैं। प्रतिमावाद ने अपना सारा ध्यान नवीन काव्यतंत्र (टेकनीक) पर ही केन्द्रित कर दिया और काव्यविषय को बहुत ही कम महत्व दिया।

राजनीति से प्रभावित कविता (पालिटिकल पोएट्री):

प्रथम महायुद्ध के बाद संसार में बहुत से परिवर्तन हुए। उसने मानव के उच्चतम आदर्शों को नीचे गिरा दिया। इस युद्ध का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह भी देखने में आया कि व्यक्ति राजनीति में अधिकतर सचेत हो गया। युद्धकाल ने आधुनिक अंग्रेजी कविता में विभिन्न भावमुद्राओं का उद्भव किया। १९१४ ई. में, महायुद्ध के आरंभ में देशभक्ति और गर्व की भावमुद्राएँ काव्य में प्रकट हुईं; किन्तु युद्ध के समाप्त होते होते काव्य में निराशा से भरी कठोरता की ही अनुभूति व्यक्त होने लगी। युद्धने एक महान कवि 'विल्फ्रेड ओवेन' को जन्म दिया। 'विल्फ्रेड ओवेन' अपने को केवल युद्धकवि मानते थे। वे कहते थे कि कविता से मेरा संबंध नहीं। मेरे काव्यविषय तो युद्ध की विभीषिका

और करुणा ही हैं। किन्तु उसके विषय में कहा जाता है कि 'ओवेन' की कविता ने परवर्ती पीढ़ी की कविता को प्रभावित किया। यदि यह कहा जाता है कि आधुनिक अंग्रेजी काव्य युद्ध का परिणाम है तो उसे केवल इस अर्थ में स्वीकार किया जा सकता है कि 'विल्फेड ओवेन' युद्धकवि था।

अपनी "ए होप फार पोएट्री" नाम की पुस्तक में 'डे लुइस' ने कहा था कि (काव्य के क्षेत्र में) उसके, ऑडेन और उसके समकालीन अन्य सभी लोगों के पूर्वज 'ओवेन' और 'हापकिन्स' थे। यद्यपि 'हापकिन्स' (मृत्यु सन् १८८९) विक्टोरिया युग के थे तथापि उनके काव्य में कुछ ऐसे गुण थे जो युद्धपरवर्ती विश्व के लिए चित्ताकर्षक थे। काव्य के बारे में 'हापकिन्स' ने अपने विचार इस तरह बताये हैं—'कवि को अपने मन और अपनी इन्द्रियों को काव्यविषय पर इस प्रकार केन्द्रित करना चाहिये कि विवेच्य विषय का सार शब्दों में उतर जाय।' उसकी कविता में आध्यात्मिक तनाव और निराशा अभिव्यक्त होती है। 'हापकिन्स' की कविता ने आधुनिक अंग्रेजी कविता को 'नई भाषा' और 'नई लय' की महत्वपूर्ण देन दी। इस नई लय का नाम उन्होंने 'स्प्रंग रिद्म' रखा। यह 'स्प्रंग रिद्म' आदिकालीन अंग्रेजी कविता के 'स्ट्रेस रिद्म' पर आधारित थी। इन छन्दों के कारण उन के छंदों की लय लोकगीतों की लय के अधिक निकट हो गई। 'हापकिन्स' अनुप्रास के लिये ऐसे शब्दों का प्रयोग करते थे जो तब तक काव्य में अप्रचलित थे। ऐसे प्रयोग सहृदय को चौंका कर उसके चित्त को आकर्षित कर लेते थे। उन्होंने गूढ़ काव्यात्मक अमूर्त शब्दों का त्याग कर साकार इन्द्रियपरक और ओजपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया।

१९३० के बाद 'ओवेन', 'हापकिन्स' और 'इलियट' के प्रतिक्रियावादी तथा उत्तराधिकारी कवियों के एक नए समूह का आविर्भाव हुआ जिसमें 'ऑडेन', 'डे लिविस', 'स्टीफन स्पेंडर', 'मकनिस' आदि कवि हुए।

कवियों के इस समुदाय के सिद्धांतों में एक क्रांति तथा गतिशीलता थी जिसका पहले के जार्जियन कवियों में बिलकुल अभाव था। उनकी दृष्टि में कविता की अभिव्यक्ति नई लय और नई भाषा में आवश्यक है। उनके अनुसार काव्य की भावप्रतिमाओं का ग्रहण आधुनिक जीवन से होना चाहिये तथा उसकी शब्दावली समकालीन बोली के और उसकी लय सहज भाषा की लय के समान होनी चाहिये।

काव्य में बुद्धिवाद (इन्टेलेक्चुअलिज्म):

कवियों के इसी वर्ग से काव्य में बुद्धिवाद का प्रारंभ हुआ। उनके मत से काव्य सहृदय के भावोद्वेगों की अपेक्षा उसकी विचार-शक्ति पर प्रभाव डालता है। उनका विश्वास था कि कवियों को राजनीति में भाग लेना चाहिये और कविता का प्रयोग अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये करना चाहिये। उनमें से अधिकांश कार्लमार्क्स से प्रभावित वामपक्षी (लेफ्टिस्ट) थे। उन लोगों ने काव्य को निम्न वर्ग के लोगों के उद्धार के प्रचार के लिये साधन बनाया। इस प्रवृत्ति के प्रारंभ में उनके ध्यान में यह बात नहीं आई कि सामयिक तत्कालीन राजनीति से बँधे रहने के कारण उनके पंख कट जाएँगे। यही कारण है कि बुद्धिवादी कविता राजनीति की ओर बढ़ चली और राजनीति ने कविता को प्रचार का साधनमात्र बना दिया।

इस वर्ग के सर्वश्रेष्ठ कवि 'ऑडेन' हैं। उनकी आरंभिक कविता में अनिश्चितता और दुर्बोधता थी। अपने अन्य समकालीन कवियों की तरह ही उन्हें अपनी काव्य-शैली (टेकनीक) का एक रूप निश्चित करना था। अपने अन्य समकालीन कवियों के समान ही उन्हें भी पहले इस भावना की बाधा का सामना करना पड़ा कि "अपने काव्य में व्यक्त ऐसे विचार को कहनेवाला और सोचनेवाला मैं एकाकी हूँ।" इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने और उनके मित्रों ने अपनी एक ऐसी वैयक्तिक भाषा की रचना कर ली जिसके काव्यात्मक संकेतों को केवल उनकी मित्रमंडली ही समझ सकती थी। किन्तु १९५० तक

'ऑडेन' ने एक [illegible] यथार्थवाद को साम्यवाद ने जन्म
कर लिया था कि [illegible] र साम्यवाद में इतना ही संबंध था
भावनाओं को [illegible] ति के विरुद्ध एक क्रांति थी और
जिज्ञासा [illegible] प्रवृत्ति के विरुद्ध एक क्रांति थी।
सहृदय के [illegible] कलाकार साम्यवादी भी थे। किन्तु
इसके लिये [illegible] ा का साम्यवाद से कोई संबंध नहीं
'ऑडेन' ने [illegible] यथार्थवादी कविता ने तूफान की तरह
क्षेत्र से किया [illegible] न्द्रे ब्रेटन' और 'फिलिप्पे सोपाल्त'
मार्क्स के [illegible] ीक) का आविष्कार किया। उनका
उसके [illegible] देखने में अर्थहीन लगनेवाले धाराप्रवाह
पृष्ठभूमि [illegible] लिपिबद्ध किया जाय तो वह व्यक्ति के
[illegible] मन पर प्रकाश डालेगा। इस प्रकार की
[illegible] विशिष्ट स्वभाव का स्पष्ट और सजीव चित्र मिलता
[illegible] का उत्तर देना आलोचनाशक्ति से परे है। अति-
[illegible] स्वतः उद्गार अथवा विचारों की प्रेरणा है।
[illegible] नियंत्रण काम करता है न वह सौंदर्यशास्त्र और
[illegible] को स्वीकार करता है। 'ब्रेटन' काव्य की इस
[illegible] ा पर मुग्ध था। अन्य विद्वान इसे कला के
[illegible] ेन समझते हैं। 'डेविड गेसकोइन' के पहले
[illegible] उपहास किया जाता रहा। 'गेसकोइन' ने
[illegible] बौद्धिकता के विरुद्ध विद्रोह किया और
[illegible] र एक ग्रंथ लिखकर इसकी महत्ता का

[illegible] ोष यह था कि वह भावों की
[illegible] एकांतिकता (

कवियों के इस समुदाय के सिद्धांतों में एक क्रांति तथा गतिशीलता थी जिसका पहले के जार्जियन कवियों में बिल्कुल अभाव था। उनकी दृष्टि में कविता की अभिव्यक्ति नई लय और नई भाषा में आवश्यक है। उनके अनुसार काव्य की भावप्रतिमाओं का ग्रहण आधुनिक जीवन से होना चाहिये तथा उसकी शब्दावली समकालीन बोली के और उसकी लय सहज भाषा की लय के समान होनी चाहिये।

काव्य में बुद्धिवाद (इन्टेलेक्चुअलिज्म):

कवियों के इसी वर्ग से काव्य में बुद्धिवाद का प्रारंभ हुआ। उनके मत से काव्य सहृदय के भावोद्वेगों की अपेक्षा उसकी विचार-शक्ति पर प्रभाव डालता है। उनका विश्वास था कि कवियों को राजनीति में भाग लेना चाहिये और कविता का प्रयोग अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये करना चाहिये। उनमें से अधिकांश कार्लमार्क्स से प्रभावित वामपक्षी (लेफ्टिस्ट) थे। उन लोगों ने काव्य को निम्न वर्ग के लोगों के उद्धार के प्रचार के लिये साधन बनाया। इस प्रवृत्ति के प्रारंभ में उनके ध्यान में यह बात नहीं आई कि सामयिक तत्कालीन राजनीति से बँधे रहने के कारण उनके पंख कट जाएँगे। यही कारण है कि बुद्धिवादी कविता राजनीति की ओर बह चली और राजनीति ने कविता को प्रचार का साधनमात्र बना दिया।

इस वर्ग के सर्वश्रेष्ठ कवि 'ऑडेन' हैं। उनकी आरंभिक कविता में अनिश्चितता और दुर्बोधता थी। अपने अन्य समकालीन कवियों की तरह ही उन्हें अपनी काव्य-शैली (टेकनीक) का एक रूप निश्चित करना था। अपने अन्य समकालीन कवियों के समान ही उन्हें भी पहले इस भावना की बाधा का सामना करना पड़ा कि "अपने काव्य में व्यक्त ऐसे विचार को कहनेवाला और सोचनेवाला मैं एकाकी हूँ।" इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने और उनके मित्रों ने अपनी एक ऐसी वैयक्तिक भाषा की रचना कर ली जिसके काव्यात्मक संकेतों को केवल उनकी मित्रमंडली ही समझ सकती थी। किन्तु १९५० तक

अतियथार्थवादी (सररियलिस्ट):

'सार्त्रे' के अनुसार अतियथार्थवाद को साम्यवाद ने जन्म दिया। किन्तु अतियथार्थवाद और साम्यवाद में इतना ही संबंध था कि साम्यवाद समकालीन राजनीति के विरुद्ध एक क्रांति थी और अतियथार्थवाद समकालीन कलाप्रवृत्ति के विरुद्ध एक क्रांति थी। दूसरे, बहुत से अतियथार्थवादी कलाकार साम्यवादी भी थे। किन्तु अंग्रेजी अतियथार्थवादी कविता का साम्यवाद से कोई संबंध नहीं था। कला के क्षेत्र में अतियथार्थवादी कविता ने तूफान की तरह प्रवेश किया, कविता में 'आन्द्रे ब्रेटन' और 'फिलिप्पे सोपाल्त' ने एक नये तंत्र (टेक्नीक) का आविष्कार किया। उनका कहना है कि ऊपर से देखने में अर्थहीन लगनेवाले धाराप्रवाह स्वगत भाषण को यदि लिपिबद्ध किया जाय तो वह व्यक्ति के अवचेतन (सब-कॉशस) मन पर प्रकाश डालेगा। इस प्रकार की कविता में हमें व्यक्ति के विशिष्ट स्वभाव का स्पष्ट और सजीव चित्र मिलता है। ऐसा क्यों होता है इसका उत्तर देना आलोचनाशक्ति से परे है। अतियथार्थवाद वस्तुतः मन के स्वतः उद्गार अथवा विचारों की प्रेरणा है। इस पर न बुद्धि का नियंत्रण काम करता है न वह सौंदर्यशास्त्र और नैतिकता के ही बंधन को स्वीकार करता है। 'ब्रेटन' काव्य की इस शैली की हृदयस्पर्शिता पर मुग्ध था। अन्य विद्वान इसे कला के लिये एक महत्त्वपूर्ण देन समझते हैं। 'डेविड गेसकोइन' के पहले इस अतियथार्थवाद का उपहास किया जाता रहा। 'गेसकोइन' ने संकेतवादी कविता की बौद्धिकता के विरुद्ध विद्रोह किया और अतियथार्थवादी सिद्धान्तों पर एक ग्रंथ लिखकर इसकी महत्ता का प्रतिपादन किया।

इस अतियथार्थवाद का सबसे बड़ा दोष यह था कि यह भावों की संप्रेषणीयता में नितांत असमर्थ था। भावोद्वेगों की एकांतिकता (इमोशनल प्राइवेसी) के कारण इस प्रवृत्ति की कविता कविता न रहकर प्रहेलिका अथवा भ्रांत शब्दजाल मात्र रह गई थी। कुछ आलोचकों का

अतियथार्थवादी और एपोकलिप्सियन कविता
(सररियलिज्म एन्ड एपोकेलिप्सियन पोएट्री):

इस प्रकार अंग्रेजी कविता की प्रवृत्तियों के अनवरत परिवर्तन-क्रम को देखने से यह ज्ञात होता है कि काव्य की आत्मा की खोज के अनंत प्रयत्न होते रहे हैं। यहीं पर सारी आधुनिक कविता के लिये एक निर्णायक प्रश्न उपस्थित होता है कि कविता की आत्मा क्या होनी चाहिये—आदर्शवाद या यथार्थवाद ? कविता क्या है—बुद्धिवाद के आवरण में छिपी हुई सामाजिक आलोचना और राजनीतिक प्रचार ? क्या नैतिकता का निर्णय करना या उपदेश देना भी काव्य और कला के क्षेत्र क अंतर्गत है ? बीसवीं शती के तीसरे और चौथे दशकों में ऐसे लेखकों का उदय होता दिखाई पड़ता है जो राजनीतिक कविता के उग्र विरोधी थे और जिन्होंने अपनी सौन्दर्यवादी आध्यात्मिक समस्याओं का समाधान दूसरे प्रकार से किया। ऐसे कवियों में 'डे लुई' ने अपनी गंभीरतम वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृतिनिर्देश और उसके चिरंतन सौन्दर्य में संचरण किया। 'स्टीफन स्पेंडर' के मत से तो कविता में मानव-जीवन की मौलिक अनुभूतियों का चित्रण करना चाहिए। उस समय अन्तर्दर्शन (इन्ट्रोस्पेक्शन) द्वारा प्रक्रियाओं का अध्ययन करने की एक मनोवैज्ञानिक पद्धति थी। अपनी निजी वेदना की अनुभूति के कारण यह जीवन को भली-भाँति समझ सका है। इसी लिए उसकी कविता में उसकी आत्मा की अभिव्यक्ति है। 'डाइलन टामस' की कविता में हम उसका उत्कट प्रकृति-प्रेम पाते हैं, उसके शैशव की सुनहली स्मृतियों का दर्शन करते हैं और साथ ही उसकी धार्मिक प्रवृत्ति के कारण हम उसके जीवन-दर्शन से भी परिचित होते हैं।

इतना सब कहने का अभिप्राय केवल यही सिद्ध करना है कि कवि किस प्रकार राजनीतिक कविता से निराश हो गये थे और पूर्ववर्ती काव्य की घिसीपिटी शैली से कितने ऊब गये थे।

अतियथार्थवादी (सररियलिस्ट):

'सार्त्रे' के अनुसार अतियथार्थवाद को साम्यवाद ने जन्म दिया। किन्तु अतियथार्थवाद और साम्यवाद में इतना ही संबंध था कि साम्यवाद समकालीन राजनीति के विरुद्ध एक क्रांति थी और अतियथार्थवाद समकालीन कलाप्रवृत्ति के विरुद्ध एक क्रांति थी। दूसरे, बहुत से अतियथार्थवादी कलाकार साम्यवादी भी थे। किन्तु अंग्रेजी अतियथार्थवादी कविता का साम्यवाद से कोई संबंध नहीं था। कला के क्षेत्र में अतियथार्थवादी कविता ने तूफान की तरह प्रवेश किया, कविता में 'आन्द्रे ब्रेटन' और 'फिलिप्पे सोपाल्त' ने एक नये तंत्र (टेकनीक) का आविष्कार किया। उनका कहना है कि ऊपर से देखने में अर्थहीन लगनेवाले धाराप्रवाह स्वगत भाषण को यदि लिपिबद्ध किया जाय तो वह व्यक्ति के अवचेतन (सब-कॉनशस) मन पर प्रकाश डालेगा। इस प्रकार की कविता में हमें व्यक्ति के विशिष्ट स्वभाव का स्पष्ट और सजीव चित्र मिलता है। ऐसा क्यों होता है इसका उत्तर देना आलोचनाशक्ति से परे है। अतियथार्थवाद वस्तुतः मन के स्वतः उद्गार अथवा विचारों की प्रेरणा है। इस पर न बुद्धि का नियंत्रण काम करता है न वह सौंदर्यशास्त्र और नैतिकता के ही बंधन को स्वीकार करता है। 'ब्रेटन' काव्य की इस शैली की हृदयस्पर्शिता पर मुग्ध था। अन्य विद्वान इसे कला के लिये एक महत्त्वपूर्ण देन समझते हैं। 'डेविड गेसकोइन' के पहले इस अतियथार्थवाद का उपहास किया जाता रहा। 'गेसकोइन' ने संकेतवादी कविता की बौद्धिकता के विरुद्ध विद्रोह किया और अतियथार्थवादी सिद्धान्तों पर एक ग्रंथ लिखकर इसकी महत्ता का प्रतिपादन किया।

इस अतियथार्थवाद का सबसे बड़ा दोष यह था कि वह भावों की संप्रेषणीयता में नितांत असमर्थ था। भावोद्वेगों की एकांतिकता (इमोशनल प्राइवेसी) के कारण इस प्रवृत्ति की कविता कविता न रहकर प्रहेलिका अथवा भ्रांत शब्दजाल मात्र रह गई थी। कुछ आलोचकों का

अभिमत यह है कि अतियथार्थवादी कला का अर्थ या तो केवल कलाकार (कवि) ही समझ सकता है या केवल मनोरोगशास्त्रज्ञ ही।

नवीन एपोकैलिप्स (न्यू एपोकैलिप्स):

अतियथार्थवाद की न्यूनताओं ने कवियों के एक नवीन समुदाय को और एक नवीन प्रवृत्ति को जन्म दिया। इन कवियों ने अवचेतन का साक्षात्कार करने में अतियथार्थवादी तंत्र (टेकनीक) की महत्ता को स्वीकार किया; किंतु मानव के चेतन-नियंत्रण के अधिकार की अस्वीकृति के संबंध में वे सहमत नहीं थे। उनका मत था कि अवचेतन मन कूड़ाखाना भी माना जा सकता है और सुन्दर विचारों का कोष भी माना जा सकता है। 'जे. एफ. हेन्ड्री' और 'हेनरी ट्रीस' इस प्रवृत्ति के प्रवर्तक थे। आधुनिक कवि ने यह अनुभव किया कि नवीन काव्यप्रवृत्तियों के कारण, अर्थात् प्रवृत्तियों के नए नए नियमों के कारण, कवि का बंधन बढ़ता ही जा रहा है और काव्यवस्तुप्रपंच संकुचित होता जा रहा है। इसी अनुभव की प्रतिक्रिया है—एपोकैलिप्सियन प्रवृत्ति। एपोकैलिप्सियन कविता ऐसे व्यक्ति की रचना हो सकती है जो जीवन की विविधता और बहुरूपता (मल्टिप्लिसिटी) को निर्भय स्वीकार करता है। कवि एपोकैलिप्सियन तभी बन सकता है जब वह अपने स्वप्नों को भी तथ्य के रूप में स्वीकार करे और जीवन के तुच्छ और चर्चा के अयोग्य विषयों को भी वाञ्छनीय समझ सके। जिस प्रकार वास्तविक जीवन विस्तृत, गहन और असीम है, उसी प्रकार इस अभिवृत्ति (ऐटीच्यूड) से कविता भी विस्तृत, गहन और असीम बन सकती है। इन्हीं शब्दों में 'हेनरी ट्रीस' ने इस प्रवृत्ति के अर्थों की व्याख्या की। 'ट्रीस' ने काव्य में धार्मिक विचारों के औचित्य को भी प्रशस्य माना है; क्योंकि ईश्वर में विश्वास, पाप की चिन्ता करनेवाले संसार में पुण्यचिन्तन और युद्ध तथा पीड़ा से भरे युग में मृदुभाषण के लिये धर्म एक आवश्यक तत्व है।

संक्षेप में, अत्याधुनिक अंग्रेजी कविता की आलोचना से हम देखते

हैं कि स्वच्छन्दतावादी व्यक्तिवाद (रोमान्टिक इन्डिविजुएलिज्म) के पुनरुत्थान के प्रयत्न हो रहे हैं। दूसरे शब्दों में 'शेली' और 'बायरन' की कविता से प्रेरणा ली जा रही है।

सारांश :

अंग्रेजी कविता में आधुनिक प्रवृत्तियों का आरंभ 'जार्जियन' कवियों के काव्य को पुनरुज्जीवित करने में असफल हो जाने के बाद हुआ। 'जार्जियन' कविता की असफलता का कारण यह है कि उनकी कविता सुसंस्कृत अभिरुचि और विद्वत्ता से आलोचित, नियंत्रित और अनुशासित कल्पना की सृष्टि थी। जार्जियन कवि समकालीन काव्य-रसिकों की आलोचना से सदा सशंक रहते थे।

फ्रांसीसी कवि 'मेलार्मे', 'रिम्बाद्', 'रिल्के' और 'वैलेरी' की कविताओं का उत्तराधिकारी संकेतवाद 'फ्रायड' और 'युंग' के अचेतन (अनकॉशस) संबंधी मनोविज्ञान से प्रभावित होकर 'यीट्स' और 'इलियट' द्वारा अंग्रेजी कविता में प्रतिष्ठित हुआ। 'यीट्स' और 'इलियट' ने 'कला कला के लिये है' (तत्त्वबोध या बौद्धिक विकास के लिये नहीं), इस सूत्र को चरितार्थ किया। संकेतवाद के अनुसार काव्य की परिभाषा है—'सौन्दर्य की शब्दमयी सृष्टि।' संकेतवादी काव्य के प्रतिष्ठित आलोचक 'सी. एम. बॉरा' के शब्दों में, संकेतवाद, सिद्धान्तः 'सौन्दर्यवादी आदर्शवाद' (एस्थेटिक आइडियलिज्म) है।

भावप्रतिमावाद (इमेजिज्म) यथार्थवाद का ही एक रूप है और इस अर्थ में यह संकेतवाद का विरोधी (ऐन्टीथिसिस) है। यह वाद-विशेष रोमांटिक कविता की अनिश्चितता तथा परंपरागत आलंकारिक रूपकों के विरुद्ध विद्रोह था। इस प्रवृत्ति की कविता में जनसामान्य की भाषा (कॉमन स्पीच) में मूर्त शब्द-चित्रों के विधान की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था और ऐसा सहृदय पाठक की सुविधा के लिये इतना नहीं जितना कवि की निष्कपटता (सिन्सियारिटी) को विश्वस्त और उत्साहित करने के लिये किया जाता था। भावप्रतिमावादी

प्रवृत्ति का दुर्भाग्य यह था कि उसके कवियों ने सारा ध्यान केवल अभिव्यक्ति कौशल पर केन्द्रित कर दिया।

युद्धकालीन कविता तथा उसकी परवर्ती राजनीतिक कविता ने भावाभिव्यक्ति को तिलांजलि देकर बुद्धिवाद को आधार बनाया। युद्ध-परवर्ती संसार में मानव-जीवन की मूल समस्याएँ देश की राजनीति से संबद्ध थीं या संबद्ध मानी जाती थीं। बुद्धिवाद और राजनीतिक विचारों ने कविता को सामाजिक आलोचना और राजनीतिक प्रचार का साधन बना दिया। काव्य का लक्ष्य राजनीतिक प्रचार नहीं हो सकता था। यही इस प्रवृत्ति के दुखद अंत का कारण था। जब कविता राजनीति की सहचरी हो जाती है तब उसके लिए "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" की उक्ति लागू नहीं हो सकती।

अवचेतन की गहराइयों से काव्य को खोदकर लाने की अति-यथार्थवादी प्रवृत्ति की चेष्टा प्रशंसनीय है। आलोचकों के मत से कविता को मानसिक चिकित्सालय में अथवा मानसिक चिकित्सालय को कविता में लाने का श्रेय अतियथार्थवादी कविता को ही देना चाहिये। मनोरोग-चिकित्सक जिस प्रक्रिया से मनोरोगी को उन्मत्त करके उसके अचेतन मन की गहराइयों में से उनके दमित अनुभवों को प्रकट करवाता है, उस प्रक्रिया को 'रेचन' (केथार्सिस) कहते हैं। इस अर्थ में हम अतियथार्थवादी कविता को रेचनात्मक कविता (केथार्टिक पोएट्री) कह सकते हैं। अतियथार्थवादी कविता का यही दोष है कि इसका अर्थ मनोरोग-शास्त्रज्ञ के अतिरिक्त और कोई समझ नहीं पाता।

अन्याधुनिक काव्यप्रवृत्ति—एपोकेलिप्सियन कविता—अन्य आधुनिक काव्यप्रवृत्तियों के नियम-बंधनों से मुक्त होने के उद्देश्य से 'शेली' और 'बायरन' की रोमान्टिक कविता से प्रेरणा ले रही है।

अंग्रेजी काव्य के इस विहंगम अवलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काव्यादर्श संबंधी मूल प्रश्न का समाधान न अभी तक

मिला है और न मिलने की कोई संभावना ही दिखाई पड़ती है; क्योंकि यह प्रश्न उतना ही पुराना है जितना काव्य और कला के प्रथम विवेचक 'प्लेटो' और 'अरस्तू' के काव्य और कला संबंधी मतभेद।

आधुनिक कविता की आलोचना का सारांश :

जिस प्रकार आधुनिक कविता 'कविता क्या है' इस प्रश्न के समाधान में लगी हुई है, उसीप्रकार आधुनिक समीक्षाशास्त्र भी 'आलोचना क्या है' और 'क्या होना चाहिये' इन प्रश्नों के उत्तर की खोज में लगा हुआ है। कला और साहित्य के सर्वप्रथम आलोचक 'प्लेटो' थे, जिन्होंने कहा था कि आलोचना का कार्य सामयिक नैतिकता और तथ्यात्मक यथार्थता (फैक्चुअल रियलिटी) के साथ काव्य के संबंध को बतलाना है। उन्होंने उस समय की उन महान् कृतियों को भी दोषपूर्ण ठहराया जिनमें यथार्थ की अपेक्षा कल्पना की मात्रा अधिक थी तथा जिनमें अनैतिकता का वर्णन किया गया था। 'अरस्तू' ने काव्यालोचन संबंधी अपने विचारों को इस प्रकार प्रस्तुत किया—

"कला जीवन की अनुकृति है। कलासृष्टि कल्पना से होती है और कल्पना की परख यथार्थ की कसौटी पर नहीं हो सकती।"

'अरस्तू' ने काव्य के जो नियम बनाए तथा काव्यालोचन की जो पद्धति बतलाई उनमें १८वीं ईस्वी शती तक विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। 'अरस्तू' के बाद के भी आलोचकों ने यह माना कि काव्यकृति के तीन पहलू हैं—विषयवस्तु (मैटर), अभिव्यक्ति पद्धति (मैनर) और सौष्ठव सिमेट्री)। इनका अध्ययन करने से ही काव्यालोचन होता है। सदा से आलोचक के कर्तव्य तीन प्रकार के माने जाते रहे हैं—अर्थनिरूपण (इंटरप्रिटेशन), परम्परानिरूपण (डेलिनियेशन आव ट्रेडीशन) और मूल्यांकन (इवैल्युएशन)। आधुनिक समीक्षाशास्त्र में जो परिवर्तन हुए, वे इन प्रश्नों के समाधान में हुए—'विषयवस्तु क्या होना चाहिये', 'अभिव्यक्ति पद्धति कैसी होनी चाहिये' और 'क्या

छंद के बिना सौष्ठव नहीं आ सकता'। आधुनिक आलोचना पारंपरिक साहित्यिक ज्ञान की सहायता से नहीं, नृतत्त्वविज्ञान (ऐन्थ्रोपोलॉजी), समाजविज्ञान (सोशियोलॉजी), मनोविज्ञान और भाषाविज्ञान की सहायता से की जाती है।

आधुनिक कविता के दो प्रमुख दोष हैं—अस्पष्टता और क्लिष्टता। अस्पष्टता के दो कारण हैं—(१) कवि में वास्तविक अनुभूति का अभाव और (२) कल्पना एवं अनुभूति के समीकरण (एसिमिलेशन) की कमी। जब कवि का संसार एक अलग संसार होता है और वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जिसे या तो केवल वही समझ सकता है या केवल उसकी मित्रमंडली, तब वह अस्पष्ट हो जाता है। अथवा जब वह उसकी कविता का विषय शाश्वत या चिरन्तन (पेरीनियल) तथ्य न होकर संकीर्ण आंचलिक (पेरोकियल) विषय होता है तब भी वह अस्पष्ट हो जाता है। इनके अतिरिक्त बुद्धिवाद भी अस्पष्टता का एक कारण है।

आधुनिक कविता की क्लिष्टता के कारण हैं—छंदःशास्त्र का ह्रास, बोलचाल के मुहावरों के प्रयोग (कलोकियलिज्म), कविताओं की आकारहीनता (फार्मलेसनेस), छंद संबंधी विभिन्न प्रयोग, 'वर्सलिब्रे' या मुक्त छंद, तथा इन सब परिवर्तनों में साथ देने में पाठक वर्ग की अक्षमता।

आधुनिक काव्य को समझने में मूल्यांकन (इवैल्युएशन) से कुछ भी सहायता नहीं मिल सकती; क्योंकि मूल्यांकन-प्रधान 'पेयर विन्टर्स' की आलोचना-शैली यही भूल करके असफल हुई है जो 'प्लेटो' ने की थी। परंपरा निरूपण (डेफिनिशन आव ट्रैडीशन) से भी हम आज की कविता को नहीं समझ सकते, क्योंकि आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियों की भिन्न भिन्न परंपराओं के होने के कारण 'इलियट' आदि की परंपरा-प्रधान आलोचना-शैली भी असफल ही रही है। हमें सहायता मिल सकती है केवल अर्थ-निरूपण (इंटरप्रिटेशन)

की पद्धति से ही। इसी निष्कर्ष पर पहुँच कर 'आइ. ए. रिचार्ड्स' ने अपने 'मीनिंग आव मीनिंग' तथा 'प्रिंसपुल्स आव प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म' नाम के ग्रंथों में 'अर्थ का मनोविज्ञान क्या है' और 'काव्य में अर्थ क्यों अस्पष्ट होता है' इन प्रश्नों की प्रयोगात्मक आलोचना की है। 'एम्पसन' ने भी अपने 'सेवन टाइप्स आव ऐम्बिग्विटी' ग्रंथ में काव्य के दोषों की मीमांसा करके आधुनिक काव्य के अस्पष्टता और क्लिष्टता—जो अनिवार्य भी है—के दोनों दोषों को दूर कर ने में अधिकांश सफलता पायी है। इन दो दोषों के अतिरिक्त, 'आइ. ए. रिचार्ड्स' के अनुसार आधुनिक काव्य की हानि का एक कारण यह भी है कि आधुनिक समाज में सांस्कृतिक असामंजस्य (कल्चरल डिसइन्टिग्रेशन) के कारण शिक्षितवर्ग में कविता को समझने की योग्यता का ह्रास हुआ है।

आधुनिक कविता को ठीक समझ कर उसका रसास्वाद तभी किया जा सकता है जब 'रिचार्ड्स' और 'एम्पसन' के आलोचना-शास्त्र का गंभीर अध्ययन किया जाय

आधुनिक अंग्रेजी कविता के विषय में इतना सब कहने के बाद 'युरो' के शब्दों में मैं अपने विचारों का उपसंहार करना चाहता हूँ—"आधुनिक अंग्रेजी कविता में वेदना अवश्य है; पर वह अस्वस्थ नहीं। इस आधी शती में पर्याप्त काव्यरचना हुई है, तथापि हम अभी भी 'मिल्टन' 'पोप' 'बायरन' या 'ब्राउनिंग' की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ

(कन्नड)

श्री कीर्तिनाथ कुर्तकोटि, एम. ए.

अनुवादक:—श्री सुरेशचंद्र त्रिवेदी, एम. ए.

उन्नीसवीं शती के अंत में कन्नड की प्राचीन कविता मृतप्राय हो गयी थी। समस्त कन्नड प्रदेश एक अवनत दशा का अनुभव कर रहा था। पुनरुत्थान काल में कन्नड प्रदेश की सांस्कृतिक एकता का विचार उत्पन्न हुआ, जिससे नवीन कवियों को प्राचीन से भिन्न सर्वथा नवीन प्रकार की कविता की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा मिली। इस प्रकार कन्नड देश की सांस्कृतिक एकता और उसके अभ्युदय का भाव कन्नड की आधुनिक कविता की प्रेरणा का प्रथम स्रोत बना।

बीसवीं शती के लगभग द्वितीय दशक में श्री बी. एम. श्रीकंठय्या ने अपने "इंग्लिश गीतगळु" नामक गीतों के संग्रह-ग्रंथ में कन्नड की आधुनिक कविता को उसके सभी अंगों से परिपूर्ण और संपन्न रूप में प्रस्तुत किया। इन गीतों में सबसे पहली बार सरल भाषा, नये छंद, नई लय, एवं अति सामान्य और रसमय विषयों के सुंदर समन्वय का दर्शन हुआ। इन गीतों से ही कन्नड की अर्वाचीन कविता के स्वरूप का निर्माण हुआ।

इस संग्रह के प्रकाशन के बाद ही जनता को यह विश्वास हो सका कि गीतकाव्य भी एक प्रकार का काव्य स्वरूप हो सकता है। कविता में सर्वप्रथम जीवन के किसी मधुर क्षण, प्रकृति की किसी एक झाँकी, हृदय की किसी अदम्य भावना या अपूर्व विचार की अभिव्यक्ति को जनता ने आश्चर्य से देखा। व्यक्तित्व की आँच में तपकर अभिव्यक्ति के भिन्न भिन्न अंगों को ग्रहण करती हुई, मूल संवेदना की ऊष्मा, गति, रंग, प्रकार आदि से उर्मीयित होकर अभिव्यक्ति साकार हो गयी। इस प्रकार आधुनिक कविता का आधार बुद्धि एवं भावना का रूप-विधान न था। स्वच्छंदतावादी काव्य के वैशिष्ट्य के अनुसार इस कविता की मूलप्रेरणा का स्रोत व्यक्ति की आत्मिक प्रेरणा थी।

इसका परिणाम यह हुआ की आधुनिक कविता में जीवन के प्रेरणा-पूर्ण क्षणों की महत्ता बढ़ गयी। इन क्षणों से ही चैतन्य कविता का निर्माण संभव हुआ। इसमें समग्र जीवन का पूर्ण चित्र वैसा नहीं मिलता जैसा प्राचीन कविता में मिलता था। इस कविता ने विशिष्ट अनुभूतियों का चित्रण करना ही काव्यसौंदर्य के लिए श्रेयस्कर समझा। वस्तुतः यह काव्यकाल कन्नड की आधुनिक कविता का वसंत है। स्पष्ट है कि यह आधुनिक कविता व्यक्तित्वप्रधान थी।

श्री 'गोविंद पै' यद्यपि नवीन कवि हैं तथापि वे प्राचीन शैली से सर्वथा मुक्त नहीं हैं। 'नंदादीप'[1] में प्रणयकाव्य का दर्शन होता है, 'गोलगोथा'[2] एक नये प्रकार की आख्यान कविता है। इनकी कविता वस्तुतः प्राचीन और नवीन कविता के बीच एक सेतुबंध है। उनकी भाषा मिश्र धातु की तरह बड़ी दीर्घजीवी है। श्री डी. व्ही. गुंडप्पा एक बुद्धिवादी कवि हैं। उन्होंने अपने प्रार्थनागीतों में भी भक्ति की बुद्धिग्राह्य अनुभूतियों का चित्रण किया है। फिर भी उनकी कविता में उनकी विचारधारा का एक पूर्ण चित्र स्पष्ट नहीं हो पाता।

आधुनिक कन्नड के परवर्ती कवि श्री दत्तात्रेय रामचंद्र बेंद्रे द्वारा संचालित एक कविमंडल धारवाड में चलता था। इस मंडल की स्थापना के पीछे एक उदात्त संकल्प था। एक ओर श्री बेंद्रे ने अनेक कवियों को प्रेरणा दी, काव्य का अभ्यास कराया, और यह बताया कि उत्तम काव्य का निर्माण केवल प्रतिभा के बल पर नहीं होता है। दूसरी ओर उन्होंने जनता में नवीन कविता के प्रति साहित्यिक अभि-रुचि पैदा की। फलस्वरूप श्री विनायक, मुगळि, मधुरचन्न, आनंदकंद आदि कवियों ने सुंदर काव्य का निर्माण किया।

श्री बेंद्रे निश्चय ही इस युग के महान कवि हैं। उनके काव्य में प्राकृतिक सौंदर्य, मानवप्रेम, राष्ट्रप्रेम, कलात्मकता, सांसारिक सुख-

(१) अखंड-दीप।

(२) जेरुसलम में वह स्थान जहाँ ईसा को सूली पर चढ़ाया गया था।

तिळिगंगे निम्मव्व मीनमूरुति तिळिसो
नन्नोडेय नडगिरुव नाव पडेगे ?

—मधुरचन्न

[हे मत्स्य देव, जगत्पावनी गंगा तुम्हारी जननी है, तुम्हारे निष्पलक नयन स्वर्णिम प्रकाश से घिरे हैं, तुम्हारी स्फटिकोपम देह-यष्टि अपनी ही कान्ति से दीप्तिमान है—मुझे बता दो कि मेरा प्रियतम कहाँ छिपा है ?]

जैसे कोई राजकुमार किसी अदृश्य कुमारी का सुवर्णमय केश पाकर उस (कुमारी) की खोज में चल निकलता है ठीक वैसे ही आध्यात्मिक कौतूहल से भरापूरा यह काव्य हमें दृश्यमान जगत् के सौंदर्य में निहित तत्व की खोज में चल निकलने की प्रेरणा देता है।

मैसूर के श्री कुवेंपु आज के एक प्रमुख कवि हैं, क्यों कि उन्होंने कन्नड के समग्र जीवन का अंकन किया है। उनकी अधिकांश कविताएँ प्रकृति-विषयक हैं। परंतु मुख्यतः वे प्रकृति के बाह्य सौंदर्य से ही प्रभावित हुए हैं। उनकी प्रत्येक कविता का प्रत्यंग विविध रंगोंसे भरा हुआ है, किंतु सारा सौंदर्य एक फोटोग्राफ जैसा लगता है। जब हम उनकी अन्य प्रकार की कविताएँ पढ़ते हैं तब हमें ऐसा मालूम पड़ता है—कि काव्य के विषय और अभिव्यंजना में एक प्रकार की विषमता है। किंतु जहाँ उनकी दृष्टि में स्पष्टता है वहाँ उन्होंने हमें भव्य कविताएँ दी हैं। विद्युत् को देखकर वे कहते हैं—'ईश्वर अपने हस्ताक्षर करते हैं। विज्ञानरूपी गृध्र की चोंच सत्य की आंतड़ियों को छिन्न-विच्छिन्न करती है।' ये सब उनकी उत्तम कविता के नमूने हैं।

श्री मास्ति के काव्यों में जीवन की विस्तृत और गहन अनुभूति एवं चिंतन पाया जाता है। उनकी प्रतिभा ने इसके लिए कथनात्मक शैली का आश्रय लिया है। गद्य की तरह जीवन के अनुभवों को वे यथार्थ रूप में

अभिव्यक्त करते हैं। 'रामनवमी' एवं 'नवरात्रि' कविता-संग्रहों में उनकी कथनात्मक कविताओं के उत्तम नमूने हैं। इन संग्रहों में उन्होंने कर्नाटक के सांस्कृतिक जीवन का सुंदर चित्रांकन किया है अतः उनकी कविता कवि के व्यक्तित्व से बंधनमुक्त होकर बढ़ने लगी है।

श्री जी. पी. राजरत्न और श्री के. एस. नरसिंह स्वामी ये दो कन्नड कविता के कल्पना-प्रधान और कुशल स्वरूप-निर्माता हैं। राजरत्न के 'एण्डकुडुकनपदगळु' (बैलेडस् आफ ए टोपर)[1] बहुत पहले प्रकाशित हो चुका था। इस संग्रह में उन्होंने 'शराबी' की एक मनोपूर्ण सृष्टि का निर्माण करके, उसके द्वारा यथार्थ जगत् का विडंबन किया है। इस कविता द्वारा श्री राजरत्न ने हमें नयी शब्दावली, मुहावरे, नयी प्रतिमा और रूपक दिये हैं।

श्री के. एस. नरसिंह स्वामी अपनी 'मैसूरमल्लिगे'[2] द्वारा अत्यंत लोकप्रिय हो गये। भाषा की मधुरता, वर्णन की यथार्थता, एवं आत्मीयता आदि गुण इन कविताओं में हैं जो कन्नड की अन्य कविताओं में क्वचित् ही प्राप्य हैं। उनके दूसरे संग्रह 'दीपदमल्लि' (लैंप-बीयरर)[3] में उन्होंने प्रतीकयोजना और बुद्धिवाद का आश्रय लिया है, फिर भी जीवन के शुद्ध आनंद को वे भूल नहीं सके।

नवीन धाराः

इस प्रकार प्रारंभिक अर्वाचीन कविता की विशेषताएं एवं उपलब्धियाँ हमने देखीं। उसे हम स्वच्छंद धारा कह सकते हैं। राष्ट्रप्रेम, आदर्शप्रियता और रहस्यवाद ये इनकी विशेषताएँ हैं। बाद में यथार्थ का प्रवाह, जो अबतक उपन्यास के क्षेत्रों में था, कविता में भी आ गया। इसका मुख्य कारण रूस के साहित्य का एवं हिंदी के आधुनिक साहित्य

(१) शराबी के गीत।

(२) मैसूर-मल्लिका।

(३) दीप-वाहक।

का अध्ययन है। कुछ कवि चाहने लगे कि कविता कारखानों की चिमनियों के धुँए से मुक्त नहीं रहनी चाहिये। पर यह बात ज्यादा टिक न पाई, क्योंकि मानवतावाद एक नया फैशन बनकर आया न कि एक श्रद्धा के रूप में। बाद में हमारे कवि एकदम यूरोप के अत्याधुनिक कवियों की ओर मुड़े।

पर प्रश्न यह है उस प्रथा की कविता के लिए यहाँ ऐसा वातावरण है क्या? यूरोपीय देशों की तरह हमने महायुद्ध का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं लिया, अतः युद्ध-जन्य असांस्कृतिकता एवं विकृति हमारे यहाँ नहीं है। केवल अनुकरण की वृत्ति से ही हमारे नवीन कवियों ने यूरोप की इस कविता-धारा के प्रभाव को स्वीकार किया। इसका एकमात्र भय यही है कि हमारे कवियों ने विकृति या काल्पनिक अनुभव करना शुरू किया। सन् १९३६ में जब श्री पेजावर सदाशिवराव ने इटली नृत्यगृह को देखा तब से कन्नड काव्य की नवीन धारा प्रारंभ हुई। सामाजिक स्वातंत्र्य का पहली बार ही साक्षात्कार होने पर कवि अपने असंप्रज्ञात चेतन की भावना को व्यक्त करने लगा। उस नृत्यगृह के गाढ नील प्रकाश में कवि ने स्वीकार कर लिया कि पाप अनिवार्य है—

वेनीशियद कटेद गाजु
सार्दिनियद सुरेय मोजु
सुंदरियरु सुत्तलु।
अग्लुतिरय मरलु नगे
माविर सिगरेट होगे
मौत्सर्दिद एत्तलु॥

—पेजावर

[वेनीशिया के कागपात्रों में सार्दीनियां की सुरा चमक रही है,

· सर्वत्र सहस्रों सिगरेटों के धूम की सुगंध छाई हुई है, जहाँ देखो वहाँ सुर-सुंदरियाँ हैं जिनकी मदिर मुसकराहट सब को मोह रही है।]

श्री पेजावर का यह नाट्य गीत कन्नड की एक अमर कविता है। दुर्भाग्यवश उसी वर्ष इटली में उनकी मृत्यु होगई।

कन्नड की नवीनतम कविता धारा के एकमेव श्रेष्ठ प्रतिनिधि कवि हैं श्री गोपालकृष्ण अडिग। उन्होंने स्वच्छंदतावादी कवि के रूप में कविताएँ रचना प्रारंभ किया। किन्तु उनका व्यक्तित्व बड़ा ही विलक्षण, अस्वस्थ, और संघर्षमय है। श्री बेंद्रे की तरह उनमें अपूर्व सृजनशक्ति है। सर्प जिस प्रकार अपनी केंचुली छोड़ देता है उसी प्रकार उन्होंने कविता के अनेक संप्रदाय छोड़ दिये हैं। इस समय वे संपूर्ण रूप से नवीन-धारा के कवि हैं। उनकी 'हिमगिरिय कंदर', 'दीपावळी,' 'गोंदलपुर', 'भूमिगीत' आदि नवीन कविताएँ हैं। इनमें 'भूमिगीत' बहुत ही श्रेष्ठ है। उन्होंने धरती के व्यक्त सौंदर्य, धरती और मानव का विषम एवं अभिन्न संबंध, जन्म-मरण के चक्र में निहित सृष्टिकर्म आदि सब चीजों का प्रबल संकेतों में वर्णन किया है। कलापक्ष की दृष्टि से श्री अडिग कन्नड के उतने ही समर्थ कवि हैं जितने श्री बेंद्रे। अंतर केवल इतना ही है कि श्री अडिग एक विरोधी शक्ति लेकर आये हैं। आलंकारिक भाषा में श्री बेंद्रे की कविता वामन का प्रथम और द्वितीय चरण है तो श्री अडिग की कविता तृतीय चरण है। दोनों कवियों ने कन्नड भाषा के प्राणतत्त्व को पहचाना है।

श्री रामचंद्र शर्मा, श्री चन्नवीर कणवी, श्री गंगाधर चित्ताल आदि तरुण कवि भी इस नवीन धारा के उल्लेखनीय कवि हैं। निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता कि कन्नड-काव्य धारा आगे क्या स्वरूप धारण करेगी। हमें कुछ समस्याओं पर विचार करना होगा। नवीन चेतना के बहाने कवि उसमें एक विकृति ला रहे हैं। ऐसा

प्रतीत होता है कि उन्होंने इसकी आवश्यकता या अनावश्यकता पर कुछ भी विचार नहीं किया। दूसरी समस्या है—पाश्चात्य काव्य और पाश्चात्य विचार-धारा का प्रभाव। इसको हमने पहले किसी समय स्वीकार किया था, क्योंकि वह समय की मांग थी। रोग के अच्छे होने पर भी दवाई को लेते रहना एक प्रकार का रोग ही है। हमारे कवियों को अब स्वतंत्र विचरण करना चाहिये। कवियों को यह अच्छी तरह जान लेना चाहिये कि नवीनवादी (मौडर्निस्ट) न होकर भी कवि आधुनिक (मौडर्न) बन सकता है।



आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ

(गुजराती)

श्री जशवंत शेखडीवाला, एम. ए.

हैं और 'साध्य' है 'वक्तव्य'—अर्थपूर्ण वक्तव्य। उनके मत से कविता का सचा सौंदर्य उस के अर्थ में है, वर्ण में नहीं। वे अर्थघन, चिंतनात्मक कविता के आग्रही थे। उन्होंने बताया कि वास्तव में कविता और संगीत दो भिन्न कलाएँ हैं और दोनों के बीच कोई अविच्छिन्न—अनिवार्य—संबंध नहीं है। अर्थ की बराबर अभिव्यक्ति के लिये उन्होंने अनुप्रास, यति, चरणान्त-विरामचिह्न आदि बंधनों का त्याग कर दिया। अंग्रेजी के अतुकांत स्वच्छंद (ब्लैंक वर्स) जैसे प्रवाही पद्य को सबसे पहले उन्होंने ग्रहण किया। उसके लिये छंदों में भी उन्होंने आवश्यकतानुसार तोड़-मरोड़ की। शब्दों के उपयोग में भी वे संकुचित विचार के नहीं थे। संस्कृत और साहित्यिक गुजराती शब्दों के साथ वे ग्रामीण गुजराती, उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों को भी उपयोग में लेने के पक्षपाती थे।

परिणाम यह हुआ कि, नवीन कविता 'गेय' से 'अगेय'—पाठ्य या वाच्य—हो गयी, अर्थात् अब गाने के बजाय कविता का 'पठन' होने लगा। कविता के विषयों की सब मर्यादाएँ उन्होंने तोड़ दीं। उनके विचार से विराट् से लेकर तुच्छ या क्षुद्र तक और अतिगंभीर से लेकर अगंभीर हास्य तक सभी कविता के विषय हो सकते थे। स्वयं उन्होंने ऐसे ही विषयों पर कविताएँ लिखी भी हैं। उन्होंने 'आरोहण' जैसी गंभीर, विचारपूर्ण, दीर्घ रचना की है, तो 'चकरडुं' और 'तनं पवन' जैसी अगंभीर-हास्यात्मक, संक्षिप्त रचनाएँ भी की हैं। वे अनीश्वरवादी थे और परंपरागत धार्मिकता में उनका विश्वास नहीं था। उनकी दृष्टि परलोक से अधिक पृथ्वी पर घूमती है। वे कोरे आदर्शों के स्थान पर यथार्थ के अधिक समर्थक हैं। जन, जीवन, जगत् के रहस्य और इन सब के पीछे छिपे हुए किसी परम तत्त्व को वे भी रात-दिन खोजते हैं, फिर भी उनका निरूपण ज्यादातर 'मूर्त' होता है। अर्थहीन वाग्विलास, अतिरंगीन कल्पना-तरंगों, खोखले शिष्टाचार या ढोंगभावों को उनकी कविता में स्थान नहीं है।

गुजराती में 'सॉनेट' (चतुर्दशपदी) और पृथ्वी छंद के व्यापक प्रचार का श्रेय भी ब. क. ठाकोर को है। नवीन कविता-काल के सभी प्रमुख कवि—चंद्रवदन, शेष, सुंदरम्, उमाशंकर, मेघाणी, झवेरी, स्नेहरश्मि, देसाई, पूजालाल—प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में ब. क. ठाकोर से प्रभावित हुए थे। इन सबकी कविताओं में निजी मौलिकता के साथ ठाकोर की विशेषताएँ भी बहुत कुछ परिमाण में मौजूद हैं।

इन दो भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के और एक-दूसरे से तत्त्वतः निराली प्रतिभावाले व्यक्तियों के प्रभाव के अलावा अन्य कई परिस्थितियों ने नवीन कविता के विकास में सहायता दी है। इनमें साम्यवादी विचारसरणी, देशी-विदेशी साहित्य का व्यापक और गहरा अध्ययन और गाँवों तथा पिछड़े हुए वर्गों से आये हुए प्रतिभाशाली कवियों को मुख्य माना जा सकता है।

१९३० के बाद गुजरात में गांधीवादी धारा के साथ-साथ साम्यवादी विचारधारा भी बहने लगी थी। नवीन कविता काल के नवयुवक कवियों पर उसका काफी गहरा प्रभाव पड़ा। इस साम्यवादी दर्शन ने नवीन कवियों को विषय-विचार-निरूपण के सम्बन्ध में अनेक नये विचार दिये। किसान-मजदूर के यातनापूर्ण जीवन, शोषकों के अत्याचार या शोषितों की यातनाएँ, क्रान्ति, सड़े-गले पुराने के प्रति विद्रोह, नवीनता तथा आमूल परिवर्तन का आग्रह, जीवन-जगत् से संबद्ध सभी जड़-चेतन वस्तुओं का स्वीकार, ऐहिक तथा भौतिक सुख-समृद्धि की लालसा, परंपरावादी धार्मिकता का विरोध या नास्तिकता, ऊंच-नीच के भेदों के प्रति घृणा, समानता, बंधुता-स्वतंत्रता के विचार—इत्यादि विषयों पर नवीन कवियों ने कविताएँ लिखी हैं। साम्यवादी क्रान्ति के साथ इस प्रकार के फ्रांसीसी और रूसी साहित्य का भी यह प्रभाव था। मेघाणी, सुन्दरम, क. मानेक, स्वप्नस्थ, उपवासी आदि कवियों की अनेक रचनाओं में साम्यवादी विचार के स्वर सुनायी देते हैं। इन कवियों ने सरल, प्रसादगुणपूर्ण

भाषा का—और कभी-कभी लोक-बोलियों का भी प्रयोग किया था। इन में कुछ लोकगीतों या भजनों के 'रागों' का नये, पर अति रमणीय रूप में प्रयोग हुआ था। मेघाणी की 'पीडितोनां गीतो' और 'युग-वंदना,' सुन्दरम् की 'कोया भगतनी कडवी वाणी,' माणेक की 'आलबेल' में ऐसी रचनाएँ बहुत हैं। ऐसी कविता में प्रचार का तत्त्व है, यद्यपि उसकी कला का स्तर नीचा नहीं है।

नवीन कविता को 'नवीन' बनाने में गाँवों और पिछड़े हुए वर्गों से आये हुए कवियों का हिस्सा कम नहीं है। सुन्दरम् और पूजालाल जैसे कवि क्रमशः लोहार और कुम्हार जैसे वर्गों से आये थे। वे दोनों और उमाशंकर, मेघाणी आदि ग्रामप्रदेश के निवासी हैं। जीवन की करुणा, विषमता, आश्रयहीनता और जटिलता क्या हो सकती है, इसका उन्हें प्रत्यक्ष परिचय एवं अनुभव है। इसीलिये उनके खींचे हुए जीवन, ग्रामजीवन या प्रकृति के चित्र सजीव हैं, समतोल हैं, और कलापूर्ण हैं; क्यों-कि वे उनके जीवन की गहरी अनुभूति के परिणाम हैं। वे हृदय से भक्त हैं। इस लोक में और परलोक में उनको श्रद्धा है। प्रणय-प्रकृति-प्रभु विषयक उनकी कविता जैसे भावों में उच्च कोटि की है वैसे ही अभिव्यक्ति में कलात्मक है। छंदोबद्ध रचनाओं के साथ उन कवियों ने लोकगीत या भजन के 'रागों' में कई सुगेय, रमणीय रचनाओं का सृजन किया है। उन में संवेदना, कल्पना, तार्किकता, कलाविवेक और जीव-जगत एवं प्रकृति-प्रभु विषयक चिंतन का सुंदर समन्वय हुआ है।

समकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों का नवीन कवियों पर बड़ा प्रभाव है। नवीन कवि सर्जक थे और साथ-साथ वे अभ्यासी, विवेचक, संशोधक और संपादक भी थे। उन्होंने मध्यकालीन गुजराती कविता का, लोकगीतों और संतवाणी का, अच्छा अध्ययन किया था। पुराने राग, ताल, लय, रूप, उपमान और मुहावरे—इन सब को वे आधुनिक

कविता में ले आये। साहित्यिक गुजराती भाषा के साथ प्रादेशिक बोलियों के विशिष्ट प्रयोग भी नवीन कविता में होने लगे। संस्कृत एवं पश्चिमी विवेचनशास्त्र के अध्ययन ने नवीन कवि को सच्ची कला—सच्चे काव्य—की परख दी थी। तत्कालीन अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन ने प्रयोगशील नवीन कवि को और भी प्रोत्साहन दिया था। अंग्रेजी के टी. एस. इलियट का प्रभाव उस पर सब से ज्यादा था। अन्य राष्ट्रीय भाषाओं में से बंगाली, उर्दू और मराठी कविता के कुछ लक्षण भी गुजराती में उतर आये थे। श्रीधराणी, स्नेहरश्मि और नाथालाल दवे पर बंगाली कविता का और 'पतिल' पर उर्दू गजल-नज़्मों का प्रभाव स्पष्ट है।

१९३० से १९४५ तक जो नवीन कविता गुजरात में फलीफूली थी उसका जन्म इन सब प्रेरक-शक्तियों के फलस्वरूप हुआ था। वह नवजागरण का युग था। सारी प्रजा शतियों की गहरी नींद से जाग उठ खड़ी हुई थी। क्रान्ति, परिवर्तन की एक नयी लहर, सर्वत्र फैल गयी थी। नवीन कविता-काल के कवि उन में अपवाद नहीं थे। वे संवेदनशील थे, पर कर्मठ—*क्रियाशील*—भी थे। *प्रजा की चेतना को,* लड़ाई को, दूर से देखनेवाले और फिर अपने संगमरमर के किले में जाकर, मयूरासन पर बैठकर गानेवाले वे नहीं थे! स्वातंत्र्य-संग्राम में वे स्वयं एक सैनिक की हैसियत से कूद पड़े थे। स्वयं जेल में गये थे और प्रत्यक्ष अनुभव किया था कि क्रान्ति क्या है; अत्याचारी शासन क्या है; मानव-जीवन की करुणा, विषमता, बेबसी क्या है; उसके मन की आशा, अकांक्षा और लगन क्या है; धंदीघर की भयानक अंधियारी दुनिया क्या है और लहलहाते हरियाले खेत या पेड़-पौधे क्या हैं; मानव की शक्ति या दुर्बलता क्या है और अदृश्य रहने पर भी मयकूट करनेवाला कोई 'परम तत्त्व' क्या है! मेघाणी, सुंदरम्, उमाशंकर, श्रीधराणी, चंद्रवदन—सब ऐसे युग के विद्रोही जीव थे। नयी चेतना तथा अपूर्व श्रद्धा से उनके मन और हृदय भरे हुए थे। इसीलिये उमाशंकर पूछते हैं—

'स्वतंत्र प्रकृति तमाम
एक मानवी का गुलाम ?'[१]

और चंद्रवदन की धुन है—

'स्वतंत्रता ! स्वतंत्रता ! मची रहो ज एक धून
मृत्युनी मजा-मीठाश भोगवीश हुं अनंत ।'[२]

नवीन कविता मानव-जीवन और मानव-पुरुषार्थ के प्रति श्रद्धा से परिपूर्ण है। मानव-जीवन की मधुरता, प्रचंड पुरुषार्थ, उज्ज्वल भविष्य की कल्पना, प्रकृति के प्रति आकर्षण, सारे विश्व के मानवों के लिए प्रेम, दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति, जड़-चेतन सभी तत्वों में गहरी दिलचस्पी और समानता, बंधुता एवं स्वतंत्रता के स्थापन का स्वप्न—इन सबका दर्शन नवीन कविता में अधिकतर होता है। कभी पुराने, प्रत्याघाती, सड़े-गले, संहारक, शोषक, क्रूर, दर्पपूर्ण, दंभी तत्वों के प्रति प्रचंड विद्रोह की भावना भी दिखाई देती है। नवीन कविता यथार्थवादी है। यह केवल जीवन-जगत् या प्रकृति के रमणीय रूप का ही चित्रण नहीं करती, उस में उनके भयानक पहलू का भी उतना ही सजीव चित्र मिलता है। उस में जीवन के पुरुषार्थ के विजय की चर्चा है तो मरण की करालता और यातनाओं की अनिवार्यता का भी वर्णन है; उस में प्रिय-मिलन का अतीव उल्लास है तो प्रणयनिष्फलता की असह्य वेदना भी है; उस में अनंत आसमान में उड़ने की आकांक्षा है तो धरती की धूल में सोने के सपने भी हैं; 'सूक्ष्म' की ओर गमन की अभिलाषा है तो 'स्थूल' में रमण करने की लालसा भी है।

इस काल में जन-जीवन-जगत् से संबद्ध हरएक जड़ या चेतन विषय पर कविता लिखी गयी है। नवीन कवियों ने भव्य और

---

१. समग्र प्रकृति स्वतंत्र है, अकेला मनुष्य ही क्यों गुलाम है ?
२. स्वतंत्रता ! स्वतंत्रता ! मची एक धुन रहे।
मैं मृत्यु का अनंत आनंद और मिठास भोगूँगा।

तुच्छ, सुकोमल और रुद्र, रमणीय और बीभत्स, हास्य और रुदन, प्रेम और विराग, स्वार्पण और लालसा, शान्ति और क्रान्ति, मानव और पशु-पक्षी, देश और दुनिया, धरती और आसमान, क्षणिक भाव और सनातन सत्य, आत्मा और परमात्मा—इन सब विषयों पर कविताएँ लिखी हैं। सच्ची कविता या कला क्या हो सकती है, इस पर भी उन्होंने काव्य लिखे थे। 'भणकार (ठाकोर); 'काव्यमंगला' और 'वसुधा' (सुंदरम्); 'विश्वशांति' और 'गंगोत्री' (उमाशंकर); 'कोडियां' (श्रीधराणी); 'आलबेल' (माणेक); 'युगवंदना' (मेघाणी); 'शेषनां काव्यो' (शेष); 'इला काव्यो' (चंद्रवदन); 'फूलदोल' और 'आराधना' (मनसुखलाल); 'इन्द्रधनु' (वेटाई); 'पारिजात' (पूजालाल); 'अर्घ्य' (स्नेहरश्मि); 'कालिंदी' (नाथालाल); 'प्रभातनर्मदा' (पतिल) इत्यादि नवीन कविता के प्रतिनिधि ग्रंथ हैं।

नवीन कविता सामान्यतः 'जीवन' और उसके पुरुषार्थ को अतीव श्रद्धा की दृष्टि से देखती है। कवि को जीवन में आनेवाली यातनाएँ विचलित नहीं कर सकतीं। मृत्यु का भी उसे डर नहीं है। स्वतंत्रता के लिये या किसी ऊँचे आदर्श के लिये मर जाना उसके लिये कोई बड़ी बात नहीं है। वह एक बार किसी कार्य में असफल हो जाता है तो हाथ जोड़ के या सिर थाम के बैठा नहीं रहता। वह फिर से दुगुनी शक्ति से पुरुषार्थ में लग जाता है। जब वह प्रेम में निष्फल होता है, उसकी प्रियतमा दूसरे की पत्नी हो जाती है, तो उसको मर्मभेदी पीड़ा अवश्य होती है, पर फिर भी वह उसे आशीर्वाद देता है: "तुम्हारा सौभाग्य अखंड बना रहे। मैं किसी प्रकार जिंदगी काट लूँगा।" वह ईश्वर की खोज करता है, पर दोस्त की तरह, दीन-दास बनकर नहीं। मेघाणी ने तो एक कविता में लिखा है कि, "भगवान, मैं तेरी परवाह नहीं करता। सच तो यह है कि तू मेरे पीछे लगा है। मुझे ढूँढने के लिये तू कछुआ, मछली, सुअर, शेर बना—मैं हाथ आया तेरे? देखता हूँ, तू मुझे कैसे पा सकता

है ?" सुंदरम् ने अपनी एक कविता में कहा है, "भाई भगवान, आज तक तूने दुनिया को केवल हैरान किया है। अब तू हमेशा के लिये स्वर्ग को चला जा; हमें कोई आपत्ति नहीं होगी।"

नवीन कवि जानता है कि प्रकृति मानव के सुख-दुःख के प्रति केवल उदासीन है, फिर भी वह उसे प्यार करता है। वह देश की स्वतंत्रता के लिये लड़ता है, मरता है; पर अन्य को मारने की बात नहीं सोचता। उसको देश से प्रेम है, पर वह दुनिया-भर के मनुष्यों से 'भाई' का नाता जोड़ने को तुला हुआ है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी सबके प्रति उसके दिल में करुणा भरी है। वह सब यातनाएँ झेलने को हरघड़ी तत्पर है— यदि इस से कुछ अच्छा परिणाम निकलता हो। वह केवल कल्पना या आदर्श-लोक में घूमने वाला 'तरंगी' नहीं है। हरएक जड़-चेतन पदार्थ का, दृश्य का, प्रसंग का, कार्य का, नियम का, विचार का, ऊर्मि का वह सूक्ष्म पृथक्करण करता है; सत्य को समझने की कोशिश करता है। 'सत्य' और 'शिव' तत्त्व का, 'सुंदर' के साथ समन्वय करने का उसका प्रयास है। फिर भी कहना चाहिए कि, नवीन कविता में 'सत्य' एवं 'शिव' तत्त्व पर जितना जोर दिया गया है उतना 'सुंदर' तत्त्व पर नहीं दिया गया।

नवीन कविता के विषय-विचार में जैसे अमर्याद विविधता है वैसे ही उसके निरूपण का क्षेत्र भी विस्तृत है। नवीन कविता-काल की अत्यधिक रचनाएँ छंदोबद्ध हैं। पृथ्वी और उपजाति (या मिश्रोपजाति) का प्रयोग सब से अधिक हुआ है। शिखरिणी, मंदाक्रान्ता, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, वसंततिलका, मालिनी, अनुष्टुप् आदि अन्य संस्कृत वृत्तों का उपयोग भी पर्याप्त हुआ है। झूलणा, हरिगीत, अंजनी, गुलबंकी, पयार ऐसे प्रादेशिक 'मात्रामेळ' या 'लयमेळ' राग-छंदों का प्रयोग भी हुआ है। सभी छंदों में 'प्रवाही पद्य' का प्रयोग होता है। शैली मुख्यतः संस्कृतमय गुजराती की है।

छंदों में तोड़-मरोड़, छंद-संमिश्रण, नये-नये प्रयोग भी बहुत हुए हैं। यह नवीन कविता अंग्रेजी कविता की तरह 'वाच्य' हो गयी है। काव्य के लिये संगीत तत्त्व अनिवार्य नहीं है, इतना ही नहीं, आज यह धारणा बन गई है कि संगीत तत्त्व काव्यत्व का घातक है। नवीन कवि इसी लिये जानबूझकर ऐसे प्रयोग करते रहे जिनमें 'गद्य तत्व' का प्राचुर्य था। विषय-चित्रण में अत्यधिक विस्तार और तथ्यों की भरमार खूब होती है। ग्रामीण शब्द-प्रयोग सदा ही औचित्य-पूर्ण नहीं होते। विचार-चिंतन की मात्रा अत्यधिक बढ़ गयी है। आवेग (इमोशन) और भावना (सेंटिमेंट) के प्रति उदासीनता दिखाई देती है। निरंकुश कल्पना पर नियंत्रण आ गया है। यथार्थ के अतिचित्रण से काव्य में शुष्कता, नीरसता, कर्कशता और एकविधता आ गयी है। चिंतन के अधिक बोझ से कभी कभी तो काव्य केवल 'पद्यात्मक गद्य' (वर्सिफाइड प्रोज) जैसा हो जाता है। प्रवाही पद्य के नाम पर काव्य की दस-बारह पंक्तियाँ एक ही बड़े वाक्य में लिखी जाती हैं। ठाकोर का एक पूरा सॉनेट- 'कोट्सनी बुलबुलने ओडमांथी' केवल दो सुदीर्घ वाक्यों में लिखा गया है। दुर्बोधता, कठिनता, क्लिष्टता, अति-गंभीरता, संस्कृतमयता, शुष्क-अगेयता, केवल परुषता—ये सब छंदोबद्ध नवीन कविता की मर्यादाएँ हैं।

नवीन कविता-काल में सुगेय गीत भी बड़ी संख्या में लिखे गये थे। उनमें लोकगीतों, मध्यकालीन संतों के भजनों और गरबी के रागों का अनुकरण किया गया था। उन कविताओं में ललित-मंजुल पदावली, हृदयंगम प्रतीक और उपमा-अलंकार, भावावेग और चिंतन का समन्वय देखा जा सकता है। ऐसे गीत मेघाणी, सुंदरम्, उमा-शंकर, स्नेहरश्मि, श्रीधराणी, मनसुखलाल, करसनदास माणेक, इन्दुलाल गांधी, नाथालाल दवे, स्वप्नस्थ, सुधांशु आदि ने लिखे हैं। ठाकोर ने भी कुछ गीतों की रचना की है, पर उनमें स्वाभाविकता कम है और लालित्य तथा माधुर्य का सर्वथा अभाव है।

नवीन कविता के 'स्वरूपों' में अच्छी विविधता है। 'सॉनेट' इनमें अधिक लोकप्रिय है। ब. क. ठाकोर ने उस रूप का सर्वप्रथम प्रयोग किया और बाद में हरएक नवीन कवि ने उसका जोरशोर से प्रचार किया। इसके अलावा इस काल में ऊर्मिकाव्य, (इमोशनल पोएट्री) पद, गीत-गरबी, प्रसंगकाव्य, खंडकाव्य, प्रतिकाव्य (ओड), संवादकाव्य, मुक्तक, पद्यकथा, चिंतनात्मक दीर्घ काव्य, रास (बैलेड्स्=वीरगाथा) आदि की रचनाएँ हुई हैं। बड़े आश्चर्य की बात है कि इस काल के कवि 'महाकाव्य' के प्रति उदासीन हो गये थे। ब. क. ठाकोर ने महाकाव्य का आरंभ किया था, पर वह एक 'खंड' तक चलकर ही शाश्वतकाल के लिये रुक गया।

नवीन कविता ने यों विषय वैविध्य, स्वरूप वैविध्य, नवीनता और यथार्थवादिता की सिद्धि प्राप्त की थी; फिर भी वह लोकप्रिय न हो सकी। अनेक विशिष्टताओं के होते हुए भी वह पढ़े लिखे लोगों तक ही सीमित रही। स्वतंत्रता के बाद के नये वातावरण में ऐसी कविता सिर ऊँचा कर खड़ी नहीं रह सकती थी। नयी पीढ़ी ने उसे एक ओर हटा दिया और गुजराती में नवीनतर कविता का युग शुरू हुआ।

नवीनतर कविता का काल:

नवीन कविता १९४५ के आसपास एक नया मोड़ लेती है और वह 'नवीनतर कविता' या 'नवतर कविता' का रूप धारण कर लेती है। 'नवीनतर' कविता पुरोगामी 'नवीन' कविता की प्रतिक्रिया है। अर्थगंभीर, चिंतन-परायण, अगेय किंतु प्रवाही पद्य में बहती हुई, नवीन कविता क्वचित् दुर्बोध एवं अविशद हो गई है। आम जनता में वह कभी लोकप्रिय नहीं हुई। नवीनतर कविता काफी लोकप्रिय है। रेडियो, सिनेमा के गीत, मुशायरा प्रवृत्ति, सभा समारंभों में काव्यगान इत्यादि कारणों से उसकी लोकप्रियता बढ़ी है। नवीनतर कविता में विषय-वस्तु तो नवीन कविता जैसे ही 'अमर्याद' रहे हैं, फिर भी वह सरल, मधुर संगीतपूर्ण और गेय है। उसमें मार्दव या सुकुमारता का आधिक्य

है। अधिकतर कविता आत्मलक्षी (सब्जेक्टिव) है। उसमें गंभीर विचार एवं चिंतन का तत्त्व अल्प होता है, पर भावावेग की कल्पना खूब होती है। आज के कवि प्रयोगशील और स्वच्छंद (रोमेंटिक) मानस के हैं। इसलिये स्वच्छंदता (रोमेंटिसिज्म) का पुट गहरा होता है।

महात्मा गांधी, ब. क. ठाकोर या साम्यवादी विचारों का प्रभाव आज के कवि पर नहीं के समान है। १९३० से १९४५ तक जो राजकीय, सामाजिक, सांस्कृतिक पुनरुत्थान की आंधी आई थी वह आज समाप्त हो गई है। इसलिये स्वातंत्र्य संग्राम, क्रान्ति, अहिंसा, हरिजनोद्धार, शोषक-शोषितों के झगड़े, अतीत के गुणगान आदि वर्तमान कविता से बहुत कुछ अंशों में बाहर निकल गये हैं। प्रचार, उपदेश तत्त्व और हेतुलक्षिता से आज की कविता सामान्यतः मुक्त है; परन्तु ऐसी प्रचारात्मक कविता का सर्वथा अभाव नहीं है। महात्माजी, पंडित नेहरू और विनोबाजी के संबंध में अनेक रचनाएँ हुई हैं, लेकिन उनमें कवि-हृदय की अदम्य भावना के प्रतिबिंब के बदले शासकवर्ग या किसी विभूतिविशेष की शुष्क, कृत्रिम प्रशस्ति ही अधिक दिखाई देती है। नवीनतर कविता का मुख्य लक्ष्य है कला और सौन्दर्य की साधना। नवीन कविता-काल में जो विस्मृति के गर्त में विलीन हो गए थे उन कवि न्हानालाल की आज पुनः प्रतिष्ठा हो रही है। उनका अनुकरण फिर जोरशोर से शुरू हुआ है।

दीर्घ चिंतनात्मक काव्यों या खण्डकाव्यों के बदले नवीनतर कवि मुक्तक, पद, गीत, गजल, ऊर्मि-काव्य (इमोशनल पोएट्री) नृत्य या अभिनय-काव्य लिखना अधिक पसंद करता है। फिर भी उमाशंकर, झवेरी, बेटाई, मणिक, राजेन्द्र, बालमुकुन्द आदि के कुछ दीर्घकाव्य इस काल में प्रसिद्ध हुए हैं। जो गजल एक बार कवि कलापी के युग में बहुत लोकप्रिय थी, पर पीछे नवीन कविता काल में मर गयी थी, उसे आज फिर से नया जन्म मिला है। हेमचंद्राचार्य के काल के

बाद सब से अधिक संख्या में मुक्तक इसी काल में लिखे गये हैं। आज भजन या पदों की रचनाओं में भी बाढ़ आ गयी है।

नवीन कविता में 'सत्य' और 'शिव' तत्त्व की उपासना अधिक थी और 'सुंदर' तत्त्व की कुछ उपेक्षा की गयी थी। नवीनतर कविता में 'सुंदर' तत्त्व की आराधना ही प्रधान लक्ष्य बन गया है। अलबत्ता, यह सुंदरता प्रधानतः 'कलेवर की सुंदरता' है। उसमें वर्णमाधुर्य और अर्थगांभीर्य दोनों का समन्वय करने की प्रवृत्ति होती है, फिर भी वर्णमाधुर्य के प्रति विशेष दृष्टि रक्खी जाती है। गेयता नवीनतर कविता के लिये मानो अनिवार्य-सी हो गयी है। लोकगीत, भजन, रास और गरबी के रागों—'ढालों'—का कुछ संशोधन-परिवर्तन सहित अनुकरण करने की प्रवृत्ति चल पड़ी है। व्रजभाषा के कवियों की 'रीति' का एवं मारवाड़ी गीतों का अनुकरण भी दिखाई देने लगा है। सुंदरम्, राजेन्द्र शाह, पिनाकिन ठाकोर ने ऐसी रचनाएँ की हैं। बंगाली और हिंदी के गीतों ने भी वर्तमान कविता को कुछ प्रेरणा दी है। बालमुकुन्द, राजेन्द्र और मकरन्द के कुछ काव्य उसके प्रमाण हैं। अनुप्रास के लिये या ताल-लय के लिये शब्द को तोड़ा-मरोड़ा जाता है। शब्द अधिकतर लोकबोली के होते हैं। संस्कृतमय शैली की रचना भी ललित-मधुर एवं प्रसादगुणपूर्ण होती है। कभी उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग भी होते हैं। संस्कृत और देशीय शब्दों को साथ-साथ रखकर नवीनतर कवि काव्य में 'रीति' (डिक्शन=विशिष्ट पदरचना) का एक विशेष सौंदर्य लाता है, पर कभी उस से रचना कृत्रिम या अस्वाभाविक भी हो जाती है।

काव्य की पंक्ति कभी दो-तीन शब्दों की होती है तो कभी बारह-पंद्रह की। उसमें कभी छोटे छोटे वाक्यखंडों में संवाद की झलक भी दिखाई देती है। कुछ गीत युगल-गानों के रूप में लिखे गये हैं। अचेतन या अर्धचेतन मन के विचारों को स्पष्ट रूप में बताने के लिये या कथयितव्य पर कुछ टीका-टिप्पणी करने के लिये 'कोष्ठ' का

प्रयोग अत्यधिक होने लगा है। ऐसे प्रयोग प्रियकान्त मणियार, निरंजन भगत और हसमुख पाठक ने अधिक किये हैं। ऐसी रचनाएँ बहुत लोकप्रिय होती हैं जो आँख, कान, जिह्वा को एकदम आकृष्ट कर सकें और कवि भी ऐसी ही रचनाएँ अधिक लिखते रहते हैं। काव्य के प्रकाशन में—मुद्रण में—भी कुछ 'नवीनता' या प्रयोगशीलता आयी है! कुछ काव्य वर्तुल, त्रिकोण या वर्ग रूप में प्रकाशित हुए हैं। कविता के अनेक नये-नये रूपों के निर्माता एवं आविष्कर्ता कवि नहीं, छापेखानेवाले बन गये हैं। नवीनतर कविता यों बहिरंगी बनी है। हाँ, यह ठीक है कि यह भाषा, अलंकार, प्रतीक और लय में नवीन कविता से बहुत आगे निकल गयी है। राजेन्द्र शाह की इस रचना में *वर्ण-माधुर्य और अर्थ-मार्मिकता—दोनों का कैसा रमणीय* समन्वय हुआ है—

जूठी झाकळनी पिछोडी
मनवाजी मारा! शीद रे जाणीने तमे ओढी!
सोड रे ताणीने मनवा! सूवा ज्यां जाशो त्यां तो—
श्याममे सेजारे जाशे ऊडी।
मनवाजी मारा! जूठी झाकळनी पिछोडी।[1]

दिनेश कोठारी की इन पंक्तियों में भी ऐसी ही मार्मिक बात कमनीय कलात्मकता से कही गई है—

फागणियानां फूल
उरने एवां डंखे, जेवी कदी न डंखे शूल।[2]

---

१. झूठी है यह ओस की चादर। हे मेरे मन, क्यों तुमने जानकर भी उसे ओढ़ा? हे मेरे मन (चादर ओढ़कर) पाँव फैलाकर ज्यों ही तुम सोओगे, त्यों ही साँस की उष्मा से ही यह उड़ जायेगी। हे मेरे मन! झूठी है यह ओस की चादर।

२. फागुन के फूल
उर में ऐसे चुभते हैं!—ऐसे तो शूल भी कभी नहीं चुभता।

वर्तमान कविता में विषय की कोई मर्यादा नहीं है। धरती और आसमान के बीच के—और दोनों के पार के भी—सभी जड़-चेतन पदार्थ नवीनतर कविता के विषय हो सकते हैं। हॉर्नबी रोड, सड़क पर पड़ा पैट्राल, जोंक सा पड़ोसी, फागुन के फूल, हीरोशिमा, कठिन शब्द, कंचुकी के बंध, आठवीं दिल्ली, मकड़ी, अहमदाबाद १९५१,—इन सब पर आज कविता लिखी जाती है। पर ऐसे विषय-निरूपण में सहज स्वाभाविक स्फुरणा के स्थान पर कवि के मन का खिलवाड़ अधिक होता है। इस में जितनी बुद्धिजन्य कल्पना होती है इतनी स्वयं ऊर्मि (इमोशन) नहीं होती। श्री विष्णुप्रसाद त्रिवेदी तो कहते हैं कि ऐसी कविता में "बुद्धि का उन्मेष भी नहीं होता। उस में होता है—केवल चंचल, रहस्यशून्य, उत्साह या विषाद को जगाने में असमर्थ ऐसी अवस्था का निर्देश मात्र। कवि अपनी रचना की बहादुरी से, कदरूपता से, बीभत्सता से, आघात पहुँचाने की अपेक्षा रखता है।" ऐसी बहुत रचनाएँ हैं जिन में केवल स्थूल चातुरी या शब्द-चमत्कार ही दिखाई देता है। नवीन कविता में जो गहराई थी वह—कुछ अपवादरूप कविताएँ छोड़कर—आज की कविता में नहीं है।

नवीनतर कवियों ने अनेक विषयों पर काव्य लिखे हैं। उन में प्रकृति, प्रणय और प्रभु के सम्बन्ध में जो काव्य लिखे गये हैं वे अधिक सुंदर हैं। वर्ण माधुर्य और अर्थगांभीर्य दोनों का दर्शन इन में होता है। ऊर्मि-कल्पना विचार और ललित मधुर प्रसादगुणपूर्ण पारदर्शक पदावली का सुभग सुंदर समन्वय ऐसे काव्यों में हुआ है। हाँ...निरंजन भगत के पद जैसे प्रभु-विषयक काव्य कभी कृत्रिम-से प्रतीत होते हैं, क्योंकि वर्तमान काल के भौतिकवादी कवि को ईश्वर में पूरी श्रद्धा नहीं है, और उसे ऐसी कोई आध्यात्मिक अनुभूति भी नहीं होती। परन्तु सुंदरम्, सुंदरजी बेटाई, राजेन्द्र शाह, बालमुकुन्द दवे, प्रजाराम रावळ, सुधांशु जैसे कवियों के काव्य (पद

या भजन) इन में अपवाद रूप हैं। इन कवियों के कई पदों में भक्त-हृदय की परमात्मा के प्रति सच्ची आर्ति स्वाभाविक रूप में हम देख सकते हैं। इन में सुंदरम् और प्रजाराम पर श्री अरविन्द के दर्शन का गहरा प्रभाव है। राजेन्द्र और बालमुकुन्द की कविता में कभी टैगोर-सी रहस्यमयता, स्वच्छन्दता और प्रतीकात्मकता का दर्शन होता है। सुधांशु मध्यकालीन संतवाणी की सौराष्ट्री परंपरा को आगे बढ़ाते हैं। बालमुकुन्द के इस पद को देखिये—

फूल रे नथी ने फोरम फोरती,
मघमघता अत्तरिया पमराट
हे जी अत्तरिया पमराट;
हवाने हेलारे चारे कोरथी
महेके मीठा अणदीठा बाग
मीठा अणदीठा बागः
शीळा ने सलूणा वाये वायरा।[१]

नवीनतर कविता में प्रणय और प्रकृति के चित्र बड़े मोहक, रंगीन, प्रगल्भ और सजीव होते हैं। उदाहरण के लिए बालमुकुन्द, राजेन्द्र, निरंजन, मणियार और आतुबाला की कविताओं में देखिये। प्रियतमा के अंग-उपांग के वर्णन अति वास्तविक और कभी कामुक होते हैं। स्त्री के स्तन इन कवियों का अतिप्रिय विषय है। उन्मत्त प्रेम या रतिक्रीड़ा का निरूपण भी तादृश और पूरा 'मूर्त' होता है। प्रणयी युगल की 'मस्ती' सामान्यतः स्थूल होती है। उस वक्त वे सारी

१. फूल नहीं है फिर भी महक फैल रही है— महकते हुए इत्र के समान वह बिखर जाती है
ओ जी! इत्र के समान वह बिखर रही है:
हवा की हिलोरों से चारों ओर से मीठे अनदेखे बाग महक उठे
मीठे अनदेखे बाग
शीतल और सलोने समीर लहराते हैं।

दुनिया को भूल जाते हैं और परस्पर खो जाते हैं। 'संभोग शृंगार' के प्रगल्भ स्पष्ट रेखाचित्र नवीनतर कविता की विशेषता है। 'विप्रलंभ शृंगार' के दर्द भरे गीत भी अनेकबार रंगीन एवं रमणीय रूप में दिखाई देते हैं। उदाहरण लीजिये—

काहे को रतिया बनाई ?
नहीं आते, नहीं जाते मन से,
तुम ऐसे क्यों श्याम कनाई ? (सुंदरम्)

और—

पिया मोरी सावन मास की रैन
कैसे कटे-तुम बीन जीयरा
पल छीन ना पावत चैन। (पिनाकिन ठाकोर)

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि गुजराती कवियों ने कभी कभी हिंदी मिश्रित गुजराती का प्रयोग किया है। विशेष कर मारवाड़ी और ब्रज का प्रभाव इनमें अधिक है। कुछ कवियों ने शुद्ध ब्रजभाषा में समस्त काव्य लिखा है।

मिलन के आनंद की और प्रगल्भ शृंगार की रचनाओं में इन कवियों की मस्ती अधिक निखर उठी है। जैसे कि—

फट रे भूंडा।
सहेज माथे तरवा आव्यां, त्यां तो खेंची जळमां ऊंडा ?[1]
(ब्रीन्द्र आचार्य)

और—

कंचुकी-बंध छूटया ने हृदयुं ज्यां हीर-गुंठन,
हैयानां लोचनो जेवां दीठां बे ताहरां स्तन।
वृत्तिओ प्रेमनी मधं केन्द्रित थई ज्यां रही;
प्रीतना पंथीनो मारो रातो नीरों नथी महीं।

---

१. मर हट रे, निगोड़े!
आया था तेरे साथ तैरने आरी, इतने में ही तूने गहरे बरते मुझे खींच लिया!

दीसंत आम तो जाणे घाटीली नानी गागर,
जाणुं छुं त्यां ज छूपा छे शक्तिना सात सागर!
मन्मथ-मेघ? घेराता कायना व्योममां लसे
तारा त्यां स्तनना जाणे मोरला ग्हेंकी ऊठशे।[1]

(प्रियकान्त मणियार)

वर्तमान कवि ने प्रकृति-विषयक काव्य भी बहुत लिखे हैं। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी-सागर-सरोवर, अरण्य-पर्वत, हरियाले खेत या मैदान, सूर्योदय सूर्यास्त और धूपछांह, चंद्र-तारे-रात्रि, बादल और आसमान, विभिन्न ऋतुएं आदि काव्य के प्रिय विषय रहे हैं। इनमें ऋतुओं के काव्य सबसे अधिक हैं। वसंत और वर्षा के कई काव्य नितान्त रमणीय हैं। काव्य का निरूपण कल्पनाप्रधान, ऊर्मियुक्त (संवेदनशील) और रंगीन होता है। छंदोबद्ध काव्य और सुगेय गीत दोनों प्रकार की रचनाएँ होती हैं। सुगेय गीत-रचनाएँ बहुत हैं। लालित्य, माधुर्य, प्रसादगुण और चित्रात्मकता इनके प्रधान लक्षण हैं। वर्तमान कवि का प्रकृति-चित्रण 'एकांगी' है, क्योंकि यह प्रकृति के रमणीय रूप का ही अधिक निरूपण करता है। प्रकृति के बाह्य रूप का दर्शन इनमें होता है, पर प्रकृति के भीतरी रहस्य के विषय में विचार या चिंतन का सामान्यतः अभाव होता है। उमाशंकर, मनसुखलाल, राजेन्द्र, बालमुकुन्द, मकरन्द, जशभाई पटेल, जयंत पाठक आदि कवियों के प्रकृति-काव्य उच्च कोटि के हैं।

---

१. ज्यों ही कंचुकी के बंध छूटे और जरी की गाँठ खुली मैंने हृदय की आँखों के समान तेरे दो स्तनों को देखा। मेरे प्रेम की समग्र वृत्तियाँ लाल-नीली नसों से बने प्रीति-पंछी के नीड़ के सदृश उन स्तनों पर केन्द्रित हो गयीं।

यों तो ये गठीली छोटी गगरियों-से हैं। जानता हूँ कि शक्ति के सातों सागर यहीं छिपे हैं। तेरे शरीर-रूपी व्योम में मन्मथ के मेघ उमड़ते ही तेरे स्तन मयूर कुहुक उठेंगे।

प्रकृति, प्रणय और प्रभु को छोड़कर अन्य विषयों पर जो कविताएँ आधुनिक काल में लिखी गयी हैं वे अधिकतर वेदना, निराशा, व्याकुलता, अश्रद्धा, पलायनवृत्ति, रुग्णमनोदशा (मॉर्बिडिटी), आदि भावों से व्याप्त हैं। *वर्तमान कवि जीवन और जगत् सबसे मानो* ऊब गया है। श्री मनसुखलाल झवेरी की इन पंक्तियों में नवीनतर कवि के दिल-दिमाग की स्थिति का अच्छा चित्र मिलता है। कवि कहते हैं—

हैये कथा नथी मनोरथनी रसीली,
छे किन्तु ए अवळ दारयनी, दीनतानी,
नैष्फल्यनी, छळनी, द्रोह प्रपंचकेरी,
वैषम्यनी, विरहकेरी, विरुपतानी।
मारुं गयुं बदली सर्व ? न पूर्वकेरो
प्राण स्फुरे हृदय के मुज इंद्रियोमां।[1]

नवीनतर कवि की हर एक रचना में 'प्रयोगशीलता' दृष्टिगोचर होती है, पर उसमें सहृदय भावक के मन या हृदय को परितोष देनेवाला तत्त्व बहुत कम है। जीवन और जगत् की कुरूपता के बीभत्स चित्र उसमें अधिक दिखायी देते हैं। कवि की दृष्टि वक्रता और कटाक्ष के साथ निराशा एवं पलायनवृत्ति के रंगों से रंगी हुई है। जीवन और जगत् से उस की आस्था उठ गयी है। उस के मनमें किसी ऊँचे आदर्श का कुछ मूल्य नहीं रहा। पुरुषार्थ का स्थान क्लैबता ने ले लिया है। प्रभु और प्रकृति के प्रति उसका जो लगाव है वह भी यथार्थ जीवन के प्रति उसके अविश्वास और उदासीनता का द्योतक

१. हृदय में मनोरथों की कोई रसिक कथा नहीं है। और जो कुछ कहानी है वह सब केवल दारुणता, दीनता, निष्फलता, छल, द्रोह, प्रपंच, विषमता, विरह, विरूपता की कहानी है। मेरा सब कुछ बदल गया है—हृदय या इन इन्द्रियों में अब पहले का प्राण नहीं रहा।

है। 'उस की मस्त ऊर्मि की बात उस की वास्तविक जीवन-संकोच से मुक्त होने की तड़पन है' (विष्णुप्रसाद)। स्वातंत्र्य के पहले उसमें एक अद्भुत नयी चेतना आयी थी, पर स्वतंत्रता के बाद उसका प्राण मानो 'हिम' हो गया है! स्वतंत्रता उसे कुछ प्रेरणा नहीं दे सकी। इसके विपरीत वर्तमान वातावरण की सर्वतोमुखी विषमता और मींपणता ने उसके दिमाग को फिरा दिया है। भयानक युद्धों से ग्रस्त भूतकाल के खोखले आदर्शों से उस को घृणा हो गयी है। पर भविष्य के बारे में भी वह कुछ साफ नहीं देख सकता। वह हताश (फ्रस्ट्रेटेड) हो गया है। कभी वह विकलता और हताशा से चीखता है तो कभी वह क्रोध, कटुता, कटाक्ष और उपहास से झीखता है। लेकिन इन भावों के पीछे जो हृदयवस्तु होना चाहिए वह उसमें नहीं है, अथवा बहुत अल्प मात्रा में है। कुछ अंशों में आज का कवि दंभी (हिपोक्रिट) भी हुआ है। वह स्त्री के अंग-उपांग के कामुकतापूर्ण चित्र से या स्थूल रति के वर्णन से पूरे काव्य को भर देता है, पर अन्त में वह 'मृत्न', 'आदर्श' या 'परम' तत्त्व के प्रति अंगुलि-निर्देश कर देता है!—मानो उसे अहंमानी (हाइ-ब्रो) वाचकों या विवेचकों का डर ही न लगता हो! कविता उसके लिये एक बौद्धिक क्रीडा मात्र रह गयी है जिस के पीछे न तो कोई स्फुरणा है न अनुभूति का स्पंदन ही। क्षणिक आवेग या चातुरी का निरूपण अति-संक्षिप्त काव्यस्वरूपों में होता है और वाचक के मानसपट पर उसका कोई स्थायी या चिरकालिक प्रभाव नहीं पडता। वर्तमान कवि वाचक को या तो अपने काव्य के अतीव वर्ण-अर्थ-माधुर्य से, प्रासादिकता-रंगदर्शिता अथवा रहस्यमयता से वशीभूत कर लेना चाहता है या शब्द-अर्थ-अलंकार और प्रतीकों के वैचित्र्य, उनकी विरूपता तथा नंगेपन से उस को चौकन्ना कर देना चाहता है। ये सब वाचक का ध्यान अपनी ओर एकदम आकृष्ट कर लेने के प्रयत्न-मात्र हैं! फलतः कविता 'सभा-रंजनी' बन गई है। उसके बाह्य कलेवर में कुछ तड़क-भड़क या सफाई जरूर आयी

पर आन्तरिक सत्त्व में तत्त्वतः वह सौ साल पहले के कवि दलपतराम की कविता से जा मिलती है।

नवीनतर कविता में वर्ण विन्यास के प्रति सचेतनता (कॉशसन्येस) है, पर विचार या अर्थ की गहनता या गंभीरता नहीं है। गेयता है, पर कृत्रिम अनुप्रास और गद्य-सी पद्यात्मकता भी तो है। उदाहरण के लिये इन पंक्तियों को देखिये:

हे सुदिन मुक्ति तणा!
राह जोता हता जेनी ते ज तुं आव्यो छे? आव।[1]
(उमाशंकर)

और—
'आवो पुत्र।'
वदती माता वृद्ध;
'रहु रह्या परदेश ए मातुं मारो वांक
आवो जो पाछा तो मळशे पाछुं मारु नाक!'[2] —(श्रीधराणी)

कला या सौंदर्य के निरूपण में या किसी वर्णन विशेष में भी नवीनतर कवि अनेक बार बीभत्सता के भाव भर देता है! जैसे—

सौन्दर्यनी सापण क्यांकथी डसे,
व्यापी जतुं झेर तरत् नसे नसे;
नीलां त्वचामां फूटतां चकामां,
फाव्या कशां जे जनवायकामां।[3] —(निरंजन भगत)

---

१. मुक्ति के हे सुदिन! जिस की हम बाट देखते थे वह तू है! आ।
२. 'आओ पुत्र,' ऐसा वृद्धा माँ कहती है। 'मेरे ही अपराध के कारण आज तक तुम को विदेश रहना पड़ा। अब अगर तुम वापस आ जाओगे तो मेरी नाक (प्रतिष्ठा) रह जायेगी।'
३. सौन्दर्य की नागिन कहीं से आकर दंश दे जाय, फौरन उसका विष नस नस में फैल जाता है और त्वचा पर नीले धब्बे उठ आते हैं। लोकोक्ति में ये ही तो काम करते हैं।

गन
और
ंजन
कत,
दूसरे
प्रवृत्ति
सबकी
काल में

स्वरूपवर्ती
ति।

"हे आखल" (हे साँढ)!

'कुमार' में 'ब्ल्यु' (Blue), और 'फ्ल्यु' (Fleu) के प्रासवाली एक कविता को काव्यशास्त्र के ज्ञाता सम्मान्य संपादकजी ने पहले पृष्ठ पर स्थान दिया था! एक नवोदित कवयित्री ने ९। और ५ (गुजराती में–'લ૫')[1] ऐसे गाणितिक प्रमेय या प्रयोग द्वारा एक अद्वितीय कविता का सृजन किया था। एक और कविजी ने 'नर्मद' की 'रेफ' को एक वर्ण पीछे हटाकर उसके वारिसों को 'नामर्द' बनाया था।

नवीनतर कविता की ये सब विशेषताएँ हैं और मर्यादाएँ भी। उस में दो 'आत्यंतिक' (Extreme) प्रवाह समानान्तर बह रहे हैं। दोनों पक्ष काव्य में कलात्मकता के उपासक हैं, पर एक जन-जीवन तथा जगत के सौन्दर्य को और दूसरा उनकी बीभत्सता को ही अपना परम लक्ष्य समझता है। इन में जो संतुलन होना चाहिए वह नहीं है। सख्या में आज बहुत कविता लिखी जाती है, पर उन में चिरंजीव रचनाएँ अल्प-सी हैं। तुकबंदी लिखनेवाले और प्रतिष्ठित कवि—दोनों की रचनाएँ कभी एक सी प्रतीत होती हैं। उमाशंकर, चंद्रवदन, श्रीधराणी ऐसे नवीनकविता-काल के अग्रणी कवियों की समकालीन कविता का स्तर नीचे उतर आया है और विलक्षण मौलिकता के स्थान पर उनमें अस्वाभाविक, आयाससिद्ध अनुकरण-प्रवृत्ति का दर्शन होने लगा है। परन्तु सुंदरम्, मनसुखलाल झवेरी, सुंदरजी बेटाई आदि नवीनकविता-काल के कवियों ने अपनी कविता का स्तर सामान्यतः सम्हाल रखा है—यह परम संतोष की बात है।

---

१. गुजराती अंकों में यदि ९। (૯।) लिखा जाए तो वह गुजराती वर्णमाला में 'ल' (લ) भी पढ़ा जाता है। और गुजराती ५ (૫) तो स्पष्ट ही 'प' (૫) जैसा है। इस प्रकार ९। और ५ को मिलाकर लिखने पर 'लप' (લ૫) भी पढ़ा जा सकता है। 'लप' का अर्थ गुजराती में 'बला' होता है।

नवीनतर कवियों में राजेन्द्र शाह, बालमुकुन्द दवे, निरंजन भगत, मकरन्द दवे, प्रियकान्त मणियार, प्रजाराम रावळ, जयन्त पाठक, जयभाई पटेल, उशनस्, वेणीभाई पुरोहित, हसमुख पाठक, सुरेश जोशी, पिनाकिन ठाकोर, प्रह्लाद पारेख, अरालवाळा, हसित बुच, तनसुख भट्ट, कोलक, अनामी, आबुवाला इत्यादि आशास्पद कवि हैं। राजेन्द्र, बालमुकुन्द, मकरन्द आदि की रचनाओं में जन-जीवन और जगत् के रमणीय, उल्लासपूर्ण चित्र अधिक दिखायी देते हैं। उशनस् और प्रजाराम ऐसे कवियों की कविता में गंभीरता का पुट है। निरंजन भगत, प्रियकान्त मणियार और हसमुख पाठक की कृतियों में वक्रता, बीभत्सता, वेदना और बुद्धिवाद का दर्शन अधिक होता है। दूसरे युवक कवियों ने भी कच्चे-अच्छे बहुत काव्य लिखे हैं। सब की प्रवृत्ति अब भी चल रही है। भविष्य में वे और भी लिखेंगे। इन सबकी काव्य-प्रवृत्ति का इसीलिये सही मूल्यांकन करना वर्तमान-काल में असंभव-सा है।

हम आशा रक्खें कि नवीनतर कविता बाह्य रूप में जैसे स्वरूपवती हुई है, वैसे भीतरी सत्त्व में भी अधिकाधिक समृद्ध बने! इति।

आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ

(बंगला)

श्री नागेंद्रनाथ उपाध्याय, एम. ए.

(श्री सुप्रकाश भट्टाचार्य ने अपने बहुमूल्य सुझावों
से लेखक को उपकृत किया।)

प्राचीन, मध्ययुगीन और आधुनिक शब्द परस्पर सापेक्ष हैं। अतः यहाँ मध्ययुगीन प्रवृत्तियों की ओर संकेत मात्र कर आधुनिक प्रवृत्तियों का परिचय दिया जा रहा है। आधुनिक बंगला काव्य में यद्यपि माइकेल मधुसूदन दत्त, विहारीलाल, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अमिय चक्रवर्ती आदि अनेक प्रतिभाएँ प्रवृत्तियों का सूत्रपात, विकास, परिष्कार आदि करनेवाली हैं तथापि इनमें रवीन्द्र का व्यक्तित्व सर्वाधिक विभूतिसंपन्न है। रवीन्द्र के प्रयाण के बाद भी उनका काव्यशरीर प्रेरणा और शक्ति प्रदान करता है। संपूर्ण बंगला काव्य के वैभव को तत्त्वतः ग्रहण कर रवीन्द्र का उदय हुआ था। इसलिये आधुनिक बंगला काव्य को, सुविधा की दृष्टि से, रवीन्द्रपूर्व, रवीन्द्र और समसामयिक तथा रवीन्द्रोत्तर—विराम की इन तीन अवस्थाओं में विभाजित कर उनकी आधुनिक प्रवृत्तियों का परिचय दिया जा रहा है।

बंगला काव्य का आधुनिक काल बंगाल में अंग्रेजों के आगमन और प्रसार के बाद से शुरू होता है। प्लासी के युद्ध (सन् १७५७ ई०) की विजय के बाद उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी। इसके साथ ही उनकी भाषा, सभ्यता, साहित्य के प्रति लोग आकर्षित हुए। परिणामतः लोकरुचि के परिवर्तन से काव्यदिशा में शनैःशनैः परिवर्तन होने लगा। चैतन्योत्तर मध्ययुगीन काव्य का विकास आधुनिक प्रवृत्तियों से युक्त काव्य के रूप में हुआ। चैतन्य की प्रेरणा से बंगला का पदावली साहित्य भी समृद्ध हुआ। मंगल काव्यों की समृद्ध परंपरा भी अठारहवीं ईस्वी शताब्दी के आरंभ तक चलती रही। मध्ययुगीन काव्य में धर्म और भक्ति तत्त्व प्रधान थे। उनकी प्रधानता के होते हुए भी काव्यात्मकता का अभाव नहीं था। मध्ययुग के अन्त तक के काव्य में विषयवस्तु की नवीनता और घटना-

वैविध्य का दर्शन नहीं होता। धर्म ने विषयवस्तु के चयन के क्षेत्र को सीमित कर दिया था। ऐसे काव्योंमें इति वृत्तात्मकता के आधिक्य का होना स्वाभाविक था। इसी पिष्टपेषण, आवृत्ति और एक ही प्रकार के काव्य के पुनःपुनः चर्वण एवं आस्वादन से लोकरुचि में परिवर्तन की इच्छा होना स्वाभाविक था। अठारहवीं ईस्वी शताब्दी के मध्य भाग में अंग्रेजी सभ्यता, संस्कृति एवं साहित्य के चमत्कार ने इस नवीनता और परिवर्तन के लिये अवसर प्रदान किया।

अंग्रेजों के आगमन तथा उनकी सभ्यता, संस्कृति, साहित्य आदि के प्रभाव के परिणामस्वरूप उदित होनेवाली नवीन प्रवृत्तियों के आरंभ के बीच लगभग सौ वर्षों का एक अन्तराय मिलता है। इस अन्तराय में शुद्ध एवं परिपुष्ट काव्य की रचना नहीं हुई। इसमें 'कवियाल' वस्तुतः तुकबन्दी, समस्यापूर्ति, आशुकविता जैसी रचनाएँ किया करते थे। ऐसी रचनाओं में रसमय शुद्ध काव्य का अभाव होता था। इनमें सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति न थी और न सहृदय को रमाने की ही शक्ति थी। इस अतराय के प्रायः प्रारंभ में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काव्य भारतचंद्र का था। रवीन्द्रपूर्व काव्य के अन्य मुख्य कवि थे—ईश्वरचन्द्र गुप्त, मधुसूदन दत्त और बिहारीलाल। ईश्वरचन्द्र के समय तक 'कवियालों' का प्रवाह प्रायः समाप्त हो चुका था।

भारतचन्द्र यद्यपि मंगलकाव्यके अंतिम रचयिता हैं तथापि उनके अन्नदा मंगल में मंगलकाव्येतर लौकिक मानव-जीवन का चित्रण मिलता है। लौकिक प्रेमकथा के सभी मध्ययुगीन उपादानों का प्रयोग, पतनोन्मुख पात्रों का चित्रण भी मिलता है। इसका मुख्य कारण अलौकिक वैष्णव प्रेम की प्रतिक्रिया और विद्यासुंदर कथा का प्रचार था। विद्यासुंदर काव्य में विद्या और सुंदर के प्रेम का चित्रण भी सर्वथा लौकिक भूमि पर ही हुआ है। भारतचन्द्र की इस विशेषता का प्रभाव 'कवियालों' की कविता पर भी पर्याप्त मात्रा में दिखाई पड़ता है। इससे स्पष्ट हो गया कि १८ वीं ई० शताब्दी के

अंत्य भाग में बंगला काव्य अलौकिक देवी-देवताओं से शनैःशनैः सामान्य लौकिक जीवन की ओर अभिमुख हो रहा था। उस समय के काव्य में विचित्र पौराणिक देवी-देवताओं में मानवसुलभ चेष्टाएँ अधिक दिखाई पड़ती हैं। भारतचन्द्र के काव्य में लोग संक्रांति-कालीन कविता के लक्षण देखते हैं। उसमें जहाँ एक ओर मानव के प्रति जागरूक चेतना के दर्शन होते हैं, वहीं दूसरी ओर अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति के चाकचिक्य से आकर्षित होकर उसकी ओर अंधभाव से बंगसमाज के बढ़ते जाने के प्रति कटूक्तियाँ, व्यंग्योक्तियाँ और भर्त्सना के वाक्य मिलते हैं। उनके काव्य में, विशेषकर अन्नदा-मंगल में, वैयक्तिक स्पर्श का प्रथम बार दर्शन होता है।

उन्नीसवीं ईस्वी शताब्दी के द्वितीय चरण में जब ईश्वरचन्द्र का उदय हुआ तब भारतचन्द्र में व्यक्त संस्कृति-प्रेम के गंभीर, संयत और बहुविध विकास की संभावना हुई। कुछ लोग ईश्वरचन्द्र की कविता में पत्रकारिता का अंश अधिक मानते हैं। उनके काव्य में श्लेषयमक-प्रचुर शब्दच्छटा तो है किंतु काव्य की रसमयता का अभाव है। उनकी कविता में एक देश विशेष के सामयिक विषयों का चयन हुआ है और उसके माध्यम से सहज अकृत्रिम स्वदेशप्रेम की अभिव्यक्ति की गई है। इस प्रकार ईश्वरचन्द्र की कविता में सर्वप्रथम बंग देश की संस्कृति और सभ्यता के प्रति एक व्यापक प्रेमभाव का विकास दिखाई पड़ा। इसी से कुछ आलोचक ईश्वरचंद्र को प्राचीन काव्य धारा का अंतिम कवि तथा आधुनिक काव्य-धारा का प्रथम कवि मानते हैं। उनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ स्वदेशप्रेम, व्यंग्यकाव्यरचना और प्रत्यक्षवर्णननैपुण्य हैं। पत्रकार होने के कारण उन्होंने उस काल में अपना दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य समकालीन नवयुवक काव्यप्रतिभाओं को "संवाद प्रभाकर" के माध्यम से एकत्र कर संपन्न किया जिसमें रंगलाल बनर्जी, मधुसूदन दत्त, बंकिमचंद्र आदि थे। देशप्रेम और संस्कृति-प्रेम की भावना इन सभी की रचनाओं में समान रूप से मिलती है।

इनका तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य बंगला काव्य में अंग्रेजी काव्य का उपस्थापन था। वे स्वयं अंग्रेजी कविता के अच्छे अध्येता थे और अंग्रेजी कविताओं के समानुछंदों में किए हुए अनुवाद को प्रकाशित कर वे अंग्रेजी कविता की तत्कालीन प्रवृत्तियों और छंदों से परिचित होने के लिये कवियों को प्रोत्साहित भी करते थे। इनकी कविता पर लोगों ने बायरन, स्काट, मूर आदि की कविताओं का प्रभाव लक्षित किया है। उनके शिष्य रंगलाल बनर्जी ने राजपूत इतिहास के विभिन्न प्रसंगों, उपाख्यानों को लेकर देशभक्ति पर वर्णनात्मक कविताओं की रचना की। उनकी उदात्त देशभक्ति की इस भावना ने स्पष्ट ही उन्हें ईश्वरचन्द्र की संपन्न परंपरा से संबद्ध कर दिया।

तत्कालीन पत्रकारिता ने नवीन विचारों के विवेकपूर्वक ग्रहण तथा प्राचीन विचारों के विवेकपूर्वक पोषण को प्रोत्साहित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक के अंत में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने समधिक दार्शनिकता और आध्यात्मिकता का प्रवर्तन बँगला गद्य में किया जिसका प्रभाव तत्कालीन एवं परवर्ती काव्य पर पड़ा। उन्होंने मातृभाषा और स्वदेशप्रेम की दुहाई देकर अँगरेजियत के खिलाफ आवाज उठाई। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध के अन्य विचारोत्तेजक व्यक्तित्व अक्षयकुमार दत्त और ईश्वरचंद्र विद्यासागर थे। समाजसुधार की प्रवृत्ति को ईश्वरचंद्र विद्यासागर से पर्याप्त बल मिला। रवीन्द्रपूर्व आधुनिक काव्य में ईश्वरचंद्रगुप्त के मंडल के कवियों में काव्य की कारयित्री प्रतिभा का सर्वोच्च विकास माइकेल मधुसूदन दत्त में दिखाई पड़ा।

बंगला-काव्य के क्षेत्र में प्रवेश के पूर्व मधुसूदन दत्त पाश्चात्य काव्य और संस्कृति का भलीभाँति अवगाहन कर चुके थे। उनकी प्रखर प्रतिभा का लोहा प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। कुछ लोगों को मधुसूदन की कविता में प्राचीन शैली और विषयवस्तु के कवि रामनारायण की प्रतिक्रिया दिखाई पड़ती है। प्राचीन शैली की कविताओं में चमत्कार-प्रधान शब्दालंकारों एवं बोझिल शब्दविलास की अधिकता है। उन्नी-

सवीं शताब्दी के पंचम दशक में मधुसूदन ने शैली और विषयवस्तु में परिवर्तन कर प्राचीन कविता को नया रूप प्रदान किया। ईश्वरचंद्र गुप्त के समय में ही बँगला के कवि अंग्रेज़ी कविता की प्रवृत्तियों एवं उसके विभिन्न छंदों की ओर आकर्षित हो चले थे। मधुसूदन ने अतुकान्त स्वच्छंद-छंद का प्रयोग बँगला में आरंभ किया। उनके 'मेघनाद वध' महाकाव्य की शैली भी पाश्चात्य है। किंतु उनके 'ब्रजांगना' काव्य पर वैष्णव काव्य-साधना की छाप मिलती है। जो लोग मधुसूदन के व्यक्तित्व-निर्माण के पाश्चात्य तत्त्वों को ध्यान में रख कर 'ब्रजांगना' की आलोचना करते हैं उन्हें स्पष्टतया यह प्रतीत होता है कि मधुसूदन ने इस काव्य में पाश्चात्य काव्य के प्रेमादर्श तथा विभिन्न दशाओं का चित्रण किया है। उसमें राधा का वह प्रेमगांभीर्य नहीं दिखाई देता जो अन्य पूर्ववर्ती वैष्णव काव्यों में अभिव्यक्त हुआ है। इन सब के होते हुए भी काव्यनैपुण्य अत्यन्त उच्चकोटि का है। मधुसूदन ने यद्यपि प्राचीन भारतीय कथावस्तु एवं पात्रों को ग्रहण किया तथापि उनका चित्रण उन्होंने नवीन परिस्थितियों एवं भावनाओं के अनुरूप किया। पाश्चात्य देशों की संस्कृति, सभ्यता, और साहित्य आदि से भलीभाँति प्रभावित होते हुए भी उनके हृदय में सीता, राधा आदि के प्रति बहुत ऊँचे भाव को रावण, मेघनाद जैसे प्रसिद्ध खलपात्रों का भी महनीयता के साथ चित्रण करना उन्हें प्राचीन परिपाटी से भिन्न और पृथक् सिद्ध कर उनके आदर्शों की परंपरा को भी भिन्न प्रमाणित करता है। संस्कृत से शब्दचयन करते हुए भी उन्होंने भाषा को बोझिल नहीं होने दिया। बँगला के प्राचीन 'पयार' छंद में भी ओज-प्रकाशन के अनुकूल संशोधन किया जिससे यह वीरकाव्य-रचना में रस-निष्पत्ति में सहायक हो सके। इस प्रकार 'अमित्राक्षर' छंद से एक नई दिशा उद्घाटित हुई। उन्होंने पाश्चात्य चतुर्दशपदियों (सोनेट) में भी सर्वप्रथम बड़ी रसज्ञता और सफलता के साथ काव्य-रचना की और गीतिकाव्य को भी अपनी भावाभि-

व्यक्ति का माध्यम बनाया। इस गीतिकविता में वीरकाव्य के ओज का अभाव था तथा स्वच्छंदकाव्य की मानसप्रवणता, प्रकृतिप्रेम आदि की विशेषता उसमें प्रस्फुटित हो उठी थी। उनकी कुछ चतुर्दशपदियों में सच्चे देशप्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। देश का सांस्कृतिक-सामाजिक जीवन और साथ ही उसकी रम्य प्रकृति, दोनों ही उनके गीतिकाव्य के विषय बने। इनकी प्रेरणादायक और राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत कविताओं में कहीं कहीं उपदेशात्मकता का आधिक्य और काव्योचित कलात्मकता की न्यूनता दिखलाई पड़ती है।

माइकेल मधुसूदन दत्त के अनुयायी और समसामयिक कवियों में यद्यपि हेमचन्द्र और नवीनचन्द्र का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है तथापि मधुसूदन की भाववैचित्र्य से युक्त नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के दर्शन इनमें नहीं होते। नवीनचन्द्र में मुख्य भावनाधारा स्वदेश प्रेम की है। ईश्वरचन्द्रगुप्त-मंडल के इन दोनों कवियों ने वीरकाव्य की रचना की थी और परंपरा से ही इन्हें स्वदेश, धर्म, संस्कृति के प्रति प्रेम तथा पीड़ित स्वदेशवासियों के प्रति करुणभाव मिले थे। कुछ आलोचकों ने रंगलाल बनर्जी, माइकेल मधुसूदन दत्त, हेमचन्द्र और नवीनचन्द्र को रवीन्द्र पूर्व काव्य के चार स्तंभों के रूप में स्वीकार किया है। नवीनचन्द्र सेन का व्यक्तित्व इन कवियों में इसलिये महिमाशाली प्रतीत होता है कि सर्वप्रथम इनके 'पलाशीर युद्ध' में अंग्रेजों के विरुद्ध हिन्दुओं और मुसलमानों के अंतिम संगठित मोर्चे की गाथा है। दूसरे रैवतक, प्रभास, कुरुक्षेत्र काव्यों द्वारा कृष्ण में उच्च कोटि के वैयक्तिक और सामाजिक गुणों का अपूर्व और पूर्ण समन्वय प्रदर्शित कर उनके विशाल व्यक्तित्व के माध्यम से राजनीतिक एवं धार्मिक दृष्टि से अस्वस्थ एवं बिखरे हुए भारत को पुनः एक शक्तिशाली महाभारत के रूप में निर्मित होने की संभावना बतलाई गई है। किंतु मधुसूदन जैसी उच्च कोटि की महाकाव्यात्मक प्रतिभा, कलात्मकता, काव्यात्मकता, लालित्य एवं रसात्मकता के समन्वय का दर्शन हम हेमचन्द्र और नवीनचन्द्र में नहीं कर पाते।

लोकजीवन के प्रति, जो आकर्षण भारतचन्द्र के समय से आरंभ हुआ वह प्रायः सभी परवर्ती कवियों में भी जागरूक रहा। अपितु उसका रूप अधिक विकसित एवं बहुविध हो गया। दूसरे शब्दों में, उसे मानवतावादी विचार-धारा का काव्य में व्यक्त रूप कह सकते हैं। इन्हीं बातों के आधार पर चौथी बात वैष्णव काव्य के सम्बन्ध में कही जा सकती है। पाश्चात्य काव्य से प्रभावित होते हुए भी इन सब कवियों की वैष्णव काव्य में रुचि थी तथा प्रायः सभी ने किसी न किसी रूप में वैष्णव काव्य-रचना अवश्य की है। यहाँ तक कि बंकिम जैसे उपन्यासकारों की भी वृत्ति कुछ इसी ओर उन्मुख कही जाती है। बिहारीलाल का शारदा-स्मरण इस धर्म-भावना का किंचित् आधुनिक रहस्यवादी रूप है जिसका विकास आगे चलकर और अधिक हुआ। मनुष्य में दिव्यता के दर्शन के लिये अब मार्ग प्रशस्त हो गया था। काव्यशैली में आडंबर, बोझिलता, सामासिकता, अति आलंकारिकता, उपदेशप्रवणता, नीतिमत्ता आदि का बिहारीलाल के समय तक आते आते प्रायः अभाव हो गया था।

यह विकास की अवस्था रवीन्द्रनाथ के उदय के पूर्णतया अनुकूल थी। रवीन्द्रनाथ अपने प्रारंभिक काव्य-जीवन में बिहारीलाल से प्रभावित थे। इस प्रभाव को स्वयं रवीन्द्रनाथ ने स्वीकार किया है। कुछ लोगों का मत है कि बिहारीलाल के बनाए हुए पथ पर ही रवीन्द्र अग्रसर हुए। बिहारीलाल की प्रशंसा भी रवीन्द्रनाथ की उक्ता के प्रसंग में ही की गई थी। जब बिहारीलाल को उषःकाल का कलरव करनेवाला पक्षी कहा जाता है तब उसका यही अर्थ लगाया जाता है कि रवीन्द्र के उदय का महिमामय संकेत देना ही बिहारीलाल की सार्थकता है। बिहारीलाल को रवीन्द्र का गुरु मानने में कुछ लोगों को अनिच्छा दिखाई पड़ती है। फिर भी इतना तो अवश्य ही स्वीकार किया जाता है कि जिस गीतिकाव्य की रम्य वीथिका पर रवीन्द्रनाथ ने अपनी मधुर यात्रा आरंभ की उसका निर्माण-निर्देश बिहारीलाल ने ही किया था, क्योंकि इन दोनों की गीतिमत्ता में विलक्षण साम्य दीख पड़ता है।

रवीन्द्र युग :

रवीन्द्र-काव्य वैविध्य और महिमा से संपन्न है। उनके गीति काव्य में सर्वथा नवीन कोमल एवं मार्मिक स्पर्श का गुण है। उन्होंने विभिन्न प्रकार के छंदों में प्रयोग कर बंगला कविता को कुछ संगीतमय छंद प्रदान किये। काव्य, कला और जीवन को एकरस करके ग्रहण करनेवाले व्यक्ति के काव्य में न केवल अभौतिक अलौकिक कल्पना-लोक की रंगीनी है और न केवल घोर भौतिक यथार्थ की अभिव्यक्ति ही। उनकी कविताएँ और गीत साक्षात् कलात्मक जीवन की साहित्यिक एवं संस्कृत अभिव्यक्ति हैं जिसमें यह भी व्यक्त हो जाता है कि रवीन्द्र के लिये कला, काव्य और जीवन की पृथक् पृथक् सत्ता नहीं है। सभी उसे एक दूसरे से प्रेरणा और जीवन ग्रहण करते दिखाई पड़ते हैं। वहाँ आधिभौतिक का तिरस्कार नहीं है अपितु उसी में उस अलौकिक आध्यात्मिक के प्रत्यक्ष की समर्थ शक्ति का अनुभव किया गया है। उनके काव्य में जहाँ आध्यात्मिक संकेत हैं वहाँ भी जीवन की वास्तविक अनुभूति का उससे गहरा सीधा संबंध प्रतीत होता है। अनेकत्व में एकत्व का माधुर्यमय दर्शन, अनेक में एक का मधुर विलास, असीम और ससीम की क्रीड़ा में आध्यात्मिक संदेशों की अनुभूति हमें रवीन्द्र की अनेक कविताओं में मिलती है। निराशा की रेखाएँ उनके काव्य में नहीं दिखाई देतीं। रवीन्द्र का समग्र काव्य उनकी अपरिमेय प्रतिभा तथा सौन्दर्य, रहस्य, आशा, विजय, जीवन और कला के अप्रतिम चित्र हैं। उनके काव्य का भाव-विचारतत्त्व मानवता है।*

इस पृथिवी के प्रति मानव की कामना स्वयं अपने में ही महिमामयी है। रवीन्द्र की कविता में इस भाव की बहुविध अभिव्यक्ति हुई है। वे बार बार मातृरूपा वसुंधरा से अपनी गोद में निगूढ़ भाव

* 'सन्ध्या' की २४ वीं कविता द्रष्टव्य।

से दुराव रखने के लिये सकरुण प्रेममय प्रार्थना करते हैं।[1] उन्हें इस वसुंधरा के कण-कण के प्रति असीम अनुराग है। इस पृथ्वी की धूलि उनके लिये अति मधुमय है। इसमें उन्हें महामंत्र के रूप में चरितार्थ जीवन की वाणी मिलती है। इसी की धूलि का तिलक मस्तक में धारण कर गर्व का अनुभव स्वर्ग में भी होता है। इस धूलि में सत्य का आनन्दरूप मूर्तिमान हो उठा है।[2] जीवन और

१. आमारे फिराये लहो, अयि वसुन्धरे,
कोलेर सन्ताने तव कोलेर भितरे
—विपुल अञ्चलतले....................

....................आमार पृथिवी तुमि
बहु वरषेर। तोमार मृत्तिकासने
आमारे मिशाये लये अनन्त गगने
अश्रान्त चरणे करियाछ प्रदक्षिण
सवितृमण्डल असंख्य रजनी दिन
युगयुगान्तर धरि;...................
................जननी, लहो गो मोरे
सघनबन्धन तव बाहुयुगे धरे—
आमारे करिया लहो तोमार बुकेर,
तोमार विपुल प्राण विचित्र सुखेर
उत्स उठितेछे येथा से गोपनपुरे
आमारे लइया याओ राखियो ना दूरे॥ —वसुंधरा।

२. ए द्युलोक मधुमय, मधुमय पृथिवीर धूलि—
अन्तरे नियेछि आमि तुलि,
एइ महामन्त्रखानि चरितार्थ जीवनेर वाणी।
सत्येर आनन्दरूप ए धूलिते नियेछे मुरति,
एइ जेने ए धुलाय राखिनु प्रणति।
—मधुमय पृथिवीर धूलि।

मृत्यु के संघर्ष में जीवन की विजयाशा मुख्यतः "ए जीवने सुंदरेर" जैसी कविताओं में अभिव्यक्त हुई है।[1] रवीन्द्र जहाँ एक ओर भारत में ही स्वर्ग को जागरित करने की प्रार्थना करते हैं, वहीं दूसरी ओर इस देश से सभी तुच्छ भय—लोकभय, राजभय, मृत्युभय आदि—को दूर कर देने की मंगलमय से प्रार्थना करते हैं। वैराग्य-साधन कर मुक्ति की आकांक्षा उन्हें नहीं है। वे असंख्य बंधनों के बीच महा आनन्दमय मुक्ति के स्वाद के लाभ की इच्छा करते हैं। वे एक ऐसी मुक्ति की कामना करते हैं जिसमें उनका मोह ही मुक्ति के रूप में प्रज्वलित हो उठेगा। उनका प्रेम ही भक्ति के रूप में फलीभूत हो रहेगा।[2] इसप्रकार की दार्शनिक भावाकुलता का विकास उनकी अंतिम कविताओं में अधिक दिखाई पड़ता है। उन्होंने मृत्यु के आतंक को स्वीकार नहीं किया, उसे आनन्दलोक के द्वार के रूप में ही ग्रहण

---

१. आसन्न मृत्युर छाया येदिन करेछि अनुभव
सेदिन भयेर हाते हय नि दुर्बल पराभव
महत्तम मानुषेर स्पर्श हते हइ नि वञ्चित,
तादेर अमृतवाणी अन्तरेते करेछि सञ्चित।
—ए जीवनेर सुन्दरेर।

२. ....स्तिः,
भारतेरे सेइ स्वर्गे करो जागरित ।।—प्रार्थना
ए दुर्भाग्य देश हते हे मंगलमय,
दूर करे दाओ तुमि सर्व तुच्छ भय—
लोकभय, राजभय, मृत्युभय आर ।—त्राण
वैराग्यसाधने मुक्ति, से आमार नय ।।
असंख्य बंधन-माझे महानन्दमय
लभिब मुक्तिर स्वाद ।...................
मोह मोर मुक्ति रूपे उठिबे ज्वलिया,
प्रेम मोर भक्ति रूपे रहिबे फलिया ।। —मुक्ति

किया है। दर्शन-संवलित कष्टसहन ने एक नवीन आशा की किरण का दर्शन कराया है। जीवनयात्रा में नूतन आविर्भाव और निस्तब्ध संध्या दोनों में दार्शनिकता के कारण ही एक विलक्षण निस्तब्धता का अनुभव होता है। इस रहस्य, छलना, सौन्दर्य, निस्तब्धता, मंगलमयता के लोक का दर्शन करके रवीन्द्र ने उसकी अभिव्यक्ति अपनी कविताओं में की है।[1] उनके काव्य में इस शिव तत्त्व की अभिव्यक्ति तो है ही, सौंदर्य और सत्य में भी जीवन-सत्य, प्रकृति-सत्य, जीवन-सौंदर्य, रूप-सौंदर्य, प्रकृति सौंदर्य की प्रमुखता दिखाई पड़ती है। उनकी 'बलाका' तथा अन्य परवर्ती संग्रहों की कविताओं में सत्य का साक्षात्कार हुआ है। सत्य और सौंदर्य दोनों ही अपने समन्वित रूप में गीतांजलि में ही व्यक्त हो चुके थे। उनकी रचनाओं में प्रकृति के उग्र और सौम्य दोनों प्रकार के सौंदर्यों का चित्रण मिलता है।

इसी प्रकार रवीन्द्र की विभिन्न काव्य-रचनाओं पर विचार करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि विशेषकर उनकी अंतिम काल की रचनाओं में आध्यात्मिकता अधिक है। उनमें दार्शनिक चिंतन का भाव भी व्यक्त हुआ है। भाषा और भाव के संयम के साथ रहस्यमय और माधुर्यमय दार्शनिक चिंतन कलात्मकता की पूर्ण रक्षा करता हुआ अभिव्यक्त हुआ है। रवीन्द्रनाथ पर रामानुज प्रवर्तित वैष्णववेदान्त का गंभीर प्रभाव था। अपने आरंभिक काल में रवीन्द्र ने वैष्णव पदावली की भी रचना की थी। किन्तु यह स्थिति आगे न रही और उपर्युक्त आधुनिक प्रवृत्तियों से उनका काव्य आपूर हो उठा। उन्होंने जो रहस्यात्मक एवं भक्तिप्लावित कविताएँ लिखीं भी उनमें अपार्थिव लोकोत्तर स्पर्श मिलता है; किन्तु कहीं भी वे 'मानव', उसकी 'पृथिवी' एवं उसके सौन्दर्य को भूल नहीं गये हैं, क्योंकि कला की प्रेरणा उन्हें जीवन से ही मिली थी। 'बलाका' की कविताओं में मुख्य रूप से आध्यात्मिक

---

१. 'आरोग्य' और 'शेष लेखा' की रचनाओं को इस संदर्भ में देखा जा सकता है।

रहस्यवादी प्रवृत्ति का दर्शन होता है। कुछ आलोचक उनकी इन कविताओं को उनके व्यक्तित्व का वास्तविक प्रकाशन मानते हैं। उनका कविरूप इनमें सहज एवं पूर्ण गौरव के साथ व्यक्त हो सका है। उन्होंने देशभक्ति की भी कविताएँ प्रभूत मात्रा में लिखी हैं जिसकी ओर संकेत ऊपर किया जा चुका है। कहीं कहीं उनकी रचनाओं में नीति का स्वर प्रमुखता-सा प्रतीत होता है किन्तु कहीं भी काव्यत्व और कलात्मकता का अभाव नहीं है। अर्थचारुत्वप्रधान उपमा, रूपक आदि अलंकारों के कुशल एवं सहज प्रयोक्ता के रूप में प्रायः सभी आलोचक उनकी महत्ता स्वीकार करते हैं। ये सारी विशेषताएँ रवीन्द्र-काव्य की मुख्यतया चार प्रवृत्तियों की ओर संकेत करती हैं—रहस्य-वाद, स्वच्छन्दतावाद, मानवतावाद और राष्ट्रप्रेम।

छन्द संबंधी प्रयोग का जो प्रयत्न भारतचन्द्र–ईश्वरचन्द्र के समय में ही आरंभ हो गया था उसे मधुसूदन दत्त ने और आगे बढ़ाया था। किन्तु मधुसूदन दत्त ने मुख्यतः वीरकाव्य को ध्यान में रखकर छन्द-संस्कार किया था। रवीन्द्र ने नवीन काव्य की आवश्यकताओं और प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर कुछ और संस्कार किये। प्राचीन–मध्ययुगीन छंदों का प्रयोग करते पर भी उनकी प्रतिभा ने उन छंदों में भी नया जीवन फूँक दिया। मधुसूदन ने जिस मुक्त छन्द (ब्लैंक वर्स) का प्रयोग आरंभ किया था, रवीन्द्र ने उसे भी नए रूप में ढाल दिया। उसमें उन्होंने गद्यानुप्रास का समन्वय कर एक नई जान डाल दी।

स्वच्छन्दतावाद या रोमान्टिक काव्य की जो विशेषताएँ बताई जाती हैं प्रायः वे सभी अति जीवन्त रूप में उनके काव्य में व्यक्त हुई हैं। विश्वव्यापी सौन्दर्य के प्रति एक अपरिचित विस्मय या कुतूहल का भाव उनकी रचनाओं में विलक्षण सुषमा की सृष्टि करता है। अतीन्द्रिय स्पर्शों एवं दृश्यों का ऐन्द्रिक अभिव्यक्तियों के रूप में ग्रहण हुआ है। इनकी कविताओं में आशा, जीवन और

आनन्द के प्रति आस्था पर्याप्त मात्रा में है। पाश्चात्य काव्य के प्रभाव से अपने को अछूता रखने की प्रवृत्ति यद्यपि रवीन्द्र-काव्य में कहीं भी नहीं दिखाई पड़ती तथापि उन्होंने देशीय चिन्तनधारा के प्रभाव को कहीं भी बाधित नहीं होने दिया है। उन्होंने केवल साहित्यिक गीतों की ही रचना नहीं की अपितु शास्त्रीय संगीत की परिपाटी का ध्यान रखते हुए उनका निर्वाह भी किया। कुछ लोग रवीन्द्र-संगीत पर विदेशी संगीत की स्वर-योजना का प्रभाव भी स्वीकार करते हैं।

रवीन्द्र-काव्य की इन विशेषताओं से स्पष्ट हो जाता है कि उनके काव्य की तीन दिशाएँ प्रकृति, प्रेम और आध्यात्मिकता हैं। उनके गीतों के मुख्यतया पाँच वर्ग निश्चित किये जा सकते हैं। इन विशेषताओं में जहाँ तक शैली का प्रश्न है, रवीन्द्र ने पाश्चात्य काव्य-सौरभ का सारतत्व ग्रहण कर लिया था। किन्तु विचार और भावसंपत्ति की दृष्टि से रवीन्द्र के प्रभाव स्रोत अधिकांशतः भारतीय थे। उन्होंने उपनिषद्-साहित्य और संस्कृति, 'संस्कृत-साहित्य, प्राचीन एवं मध्यकालीन बंगला-साहित्य, मध्ययुगीन वैष्णव-गीत, 'बाउल'-साहित्य, ग्रामीण सभ्यता एवं संस्कृति और मध्ययुगीन हिन्दी के संत-साहित्य का गंभीर अध्ययन किया था। इनमें से अधिकांश के प्रति उनका विशेष मोह था। इस दृष्टि से उनके ऐतिहासिक महत्व का मूल्यांकन करते हुए कुछ लोग रवीन्द्र को कविरूप में भारतीय संस्कृति का अंतिम प्रतिनिधि कहना चाहते हैं। मध्ययुगीन भारतीय अभारतीय संस्कृतियों के सार भी उन्हें विभिन्न स्रोतों से मिले थे। आधुनिक पाश्चात्य बौद्धिक सफलता भी उन्हें प्राप्त थी। प्रत्येक सहृदय और विदग्ध अनुभव करता है कि इस समन्वित एवं वैविध्यपूर्ण विराट-व्यक्तित्व का वर्णमय विग्रह अमर है।

रवीन्द्र के समसामयिक कवियों पर या तो विहारीलाल का प्रभाव है या रवीन्द्र का। इन कवियों में अक्षयकुमार बड़ाल, सत्येन्द्रनाथ दत्त,

कामिनी राय, कालिदास राय, रजनीकान्त सेन, यतीन्द्रमोहन बागची, मोहितलाल मजूमदार, काजी नजरुल इस्लाम, आदि का नाम विशेष-रूप से उल्लेखनीय है। अक्षयकुमार दत्त को भी रवीन्द्र की तरह ही बिहारीलाल का शिष्य कहा जाता है। शांतरस और भावप्रधानता उनकी कविता की विशेषताएँ हैं। सत्येन्द्रनाथ दत्त छंदों के राजा थे। उन्होंने संस्कृत छंदों का तथा अंग्रेजी स्वर-विन्यास का बंगला काव्य में प्रयोग किया। पाश्चात्य भाव भाषा का स्वात्मगत रूप उनकी कविताओं में मिलता है। काजी नजरुल इस्लाम की कविता में 'तारुण्य' का उद्दाम वेग है। स्वदेश-प्रेम और ओजप्रधान कविता के गायक नजरुल इस्लाम में जैसे देश की युवाशक्ति का आत्मप्रकाश हुआ हो। भावावेश का तीव्र प्रकाश इनकी कविता में मिलता है। इन सभी कवियों में समधिक वे ही प्रवृत्तियाँ मिलती हैं जो रवीन्द्रकाव्य में बताई जा चुकी हैं। वास्तविक बात यह है कि रवीन्द्र के विशाल व्यक्तित्व में संपूर्ण युग समाहित-सा प्रतीत होता है। इसलिये आधुनिक बंगला की प्रवृत्तियों का विवेचन करते समय बहुत से आलोचक केवल रवीन्द्र-काव्य का विवेचन कर संतोष कर लेते हैं। किन्तु सच्ची बात यह है कि सत्येन्द्रनाथ दत्त, काजी नजरुल इस्लाम और मोहितलाल मजूमदार का काव्य उस रवीन्द्र-युग में भी कुछ वैशिष्ट्य रखता है। संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि संपूर्ण रवीन्द्र-युग में स्वच्छंदतावाद और स्वदेश प्रेम की विशेषताएँ मुख्य थीं। अन्य विचार-धाराएँ एवं विशेषताएँ इनमें समाविष्ट होकर इनके वर्ण और प्रकाश को और भी प्रदीप्त करती रहीं।

रवीन्द्र-काव्य के इतने महिमान्वित और दिशानिर्देशक रूप को देखकर कुछ आलोचक बंगला काव्य के रवीन्द्रोत्तर विकास जैसी किसी चीज को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं क्योंकि वे लोग रवीन्द्र-काव्य को आज भी एक 'जीवित शक्ति' मानते हैं। उससे अगलन कविता भी जीवन ग्रहण कर्ती रही है। रवीन्द्र की

कविता का प्रभाव वे आज की कविता पर इस सीमा तक स्वीकार करते हैं कि जैसे उनके सामने रवीन्द्रोत्तर काव्य की कोई पृथक् सत्ता ही नहीं है। वस्तुतः, यदि विचार किया जाय, तो आधुनिक कविता में व्यक्तिवाद और वैयक्तिक बुद्धिवादिता का स्वर प्रबल है। यद्यपि इस नई अवस्था के कवियों ने रवीन्द्र को अच्छी तरह पढ़ा है, समझा है और आत्मसात् भी किया है तथापि उनके काव्य में सब कुछ वही नहीं है जो रवीन्द्र-काव्य में है। इसके कई कारण हो सकते हैं। प्रथमतः, वे आवृत्ति और पिष्टपेषण के प्रति सशंक और सतर्क हैं। रवीन्द्र-काव्य की आवृत्ति उन्हें प्रिय नहीं है। तो क्या वस्तुतः यह कविता रवीन्द्र कविता की प्रतिक्रिया है। शैली की दृष्टि से वे रवीन्द्र के उन प्रतीकों, उपमानों आदि का प्रयोग करना पसंद नहीं करते जो पारंपरिक हैं। स्वच्छन्दतावाद, मानवतावाद, प्रेम, सौन्दर्य आदि की भावप्रबल मूर्तियों से उनकी बौद्धिक बुभुक्षा की शान्ति नहीं होती। काव्य केवल हृदय का भावोच्छ्वास न होकर विचार और बुद्धिपक्ष से जागरूक व्यक्ति की समर्थ रचना है जो सामान्य व्यक्ति की भी बौद्धिक पिपासा–बुभुक्षा को भोजन देने की शक्ति रखती है। काव्य मनोरंजन का साधन नहीं, हृदय परिष्कार का साधन नहीं, वह बुद्धिप्रबल मानव के चिन्तन और समाधान को उपस्थित करने का साधन है। दूसरे, परिस्थितियों के परिवर्तन ने उन्हें विषय-वस्तु और शैली के इस परिवर्तन के लिये बाध्य कर दिया। लगभग १९४०–१९४१ के बाद से, द्वितीय महायुद्ध काल में ही स्वतंत्रता के युद्ध में विचार-प्रधान संघर्ष और क्रांतिकारी संघर्ष ने अंततः विजय प्राप्त की। महायुद्ध के समाप्त होते होते १९४७ तक भारत की सारी परिस्थितियों में विराट् परिवर्तन हो गया। स्वदेश प्रेम और स्वतंत्रता की लड़ाई की अपेक्षा अब राष्ट्र-निर्माण का प्रश्न सामने आ गया। इसके लिये जहाँ एक ओर विचार और बुद्धि के समायोग की आवश्यकता पड़ी, वहाँ दूसरी ओर अपेक्षाकृत अधिक उग्र रूप में 'मानवजाति' की रक्षा की। दूसरे शब्दों में अब संघर्ष की

अपेक्षा विचार का महत्त्व बढ़ा। तीसरे, पाश्चात्य बौद्धिक विचारधारा का प्रभाव अब केवल प्रासंगिक चर्चा के रूप में ही नहीं रह गया है अपितु वह कवि के जीवन में उतर आया है। अब वह विचारक, चिन्तक हो गया है। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था अब टूट रही है, पर अभी उसका ध्वंस पूरा नहीं हुआ। नये विचारों की जड़ धीरे धीरे गहरी होती जा रही है। चौथे, प्रथम महायुद्ध के बाद के पाश्चात्य प्रयोगशील साहित्य का अब पूरा पूरा प्रभाव पड़ रहा है। विषयवस्तु और शैली दोनों में टी. एस. इलियट का प्रभाव पूरी तरह से दिखाई पड़ने लगा है। पाश्चात्य आधुनिक कविता ने अब अपनी दिशा निर्धारित कर स्वच्छन्दतावादी शैली की ओर पुनरावर्तन करना आरंभ कर दिया है। बंगला कविता की दिशा और रूप का अभी तक निश्चय नहीं हो सका है। इनके अतिरिक्त युद्धकालीन एवं युद्धपरवर्ती आविष्कारों ने प्रकृति पर मानव की विजय का उद्घोष किया है। मानव की गरिमा क्रमशः वर्द्धमान है। उसका विज्ञानसिद्ध महत्त्व और बढ़ गया है। मानव अब केवल एक विश्व नहीं, अनंत विश्वों से संबंधित होने जा रहा है। ये सारी संभावनाएँ, ये सारे आकर्षण आज एक साथ कवि की प्रतिभा को कसौटी पर कस रहे हैं। राष्ट्र-निर्माण भी उन्हें आकर्षित कर रहा है। कवि इनमें से किसे लेकर बढ़े, यह एक समस्या है। साथ ही, वह विज्ञापन से अछूता रहकर अन्य समसामयिक सीमाओं और काव्य परिधियों से मुक्त और विलक्षण भी होना चाहता है। इन सबके परिणामस्वरूप वर्तमान कविसमूह में एक अनिश्चितता और उद्विग्नता है। इस विराट् वस्तुवैभव के लिये हम एक रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्ववाले कवि की प्रतीक्षा कर रहे हैं। लगभग पिछले २०-२५ वर्षों के काव्यसाहित्य को देखने से इस जिज्ञासा का समाधान नहीं मिलता।

रवीन्द्र के बाद के कवियों में प्रमुख हैं—अमिय चक्रवर्ती, प्रेमेन्द्र मित्र, जीवनानन्ददास, बुद्धदेव बसु, सुकान्त भट्टाचार्य, सुभाष मुखोपाध्याय, दीनेशदास, अजित दत्त, यतीन्द्रनाथ सेनगुप्त, अशोकविजय रहा, प्रमथनाथ विशी, मणीन्द्रराय, विश्व बंद्योपाध्याय, संजय भट्टाचार्य, सुधीन्द्रनाथ दत्त, हरप्रसाद मित्र आदि। इन कवियों ने विषयवस्तु और शैली के परंपरागत रूप को ग्रहण करने में संकोच किया है। इन लोगों का उत्साह नवीन अस्पृष्ट विषयों के चयन में रहा है। काजी नजरुल इस्लाम की कविता लगभग १९४२ तक मौन हो गई थी, पर उसमें भी राष्ट्र के हीन एवं लघुता के भाव से ग्रस्त तत्त्वों के उद्धार की उद्दाम यौवन से पूर्ण भावना उद्‌गीरित हुई थी। उसमें देश-प्रेम की भावना के साथ मानवतावाद का समन्वय भी था। चंडीदास ने बहुत पहले ही 'मनुष्य सत्य' के सर्वोपरि होने की घोषणा की थी—

शुनह मानुष भाइ!
सबार ऊपर मानुष सत्य!
ताहार ऊपर नाइ!

नये काव्य के अभाव को ध्यान में रखते हुए रवीन्द्रनाथ ने 'जन्म-दिने' काव्य में भी इसी तथ्य की ओर संकेत किया था। इन कवियों ने समाज के उपेक्षित और पीड़ित मानव की पुकार को बड़े ध्यान से सुनकर उसका विश्लेषण भी किया है। धरती और मनुष्य की महिमा का गान रवीन्द्र ने भी किया था। मनुष्यत्व देवत्व से महान् है। किन्तु उस मनुष्य का मूल्य आज अत्यधिक कम हो गया है। शांति और सुख के ऊपर युद्ध-विभीषिका और दुःख ने अधिकार कर लिया है। मनुष्य की बुद्धि ने इस विभीषिका को जन्म दिया है, समस्याएँ उत्पन्न की हैं। बुद्धि ही इनका समाधान भी करेगी। दिशा-परिवर्तन की आवश्यकता है। चिंतन की दिशा में परिवर्तन होना चाहिये। मनुष्य के पुनः विश्लेषण और संश्लेषण की आवश्यकता है। उसके यथार्थ और स्थूल जीवन की जटिलताओं का समाधान आकाश

के पास नहीं है, हृदय के पास भी नहीं है। भौतिक और बुद्धिवादी जीवन दर्शन अब मानव की गरिमा, महिमा, वेदना, पीड़ा, संकीर्णता का विश्लेषण कर रहे हैं। जीवन के आदर्श आज युगपरिवर्तन के साथ बदल गए हैं। बंगला कविता भी नई करवट ले रही है, किन्तु वह किस दिशा की ओर उन्मुख होकर स्थिर रहेगी यह अनिश्चित है।

इस नई बंगला कविता में रमणी के मसृण, कोमल, श्यामल और नेत्रों में चमक पैदा करनेवाले केशों जैसी कल्पना का विहार नहीं है। उसके ऊपर एक विलक्षण और अलौकिक रहस्यमय आवरण भी नहीं है। रहस्यवादिता और आध्यात्मिकता भी जैसे स्थूलता और जड़ता के बोझ से जड़ हो गई है, फिर भी बुद्धि की सूक्ष्मता तथा उलझन ने उसे कुछ बोझिल और जटिल बना दिया है। बुद्धि ने नए उपमानों को ग्रहण किया है तथा विराट् कल्पना की संपत्ति भी बुद्धि की तर्कवादिता और यथार्थवादिता से पृथ्वी की वस्तुसंपत्ति तक ही सीमित रह गई है। आकाश और धरती दोनों ही पूर्ववर्ती कविता में परस्पर समन्वित एवं सहयोगी भाव से चित्रित एवं प्रेमभाव में परिबद्ध दिखाई देते हैं। नवीन कविता में पृथ्वी ऊर्ध्वबाहु होकर युगों से आकाश के पास पहुँचने का जीतोड़ प्रयत्न कर रही है, किन्तु उनकी एकाकारिता की कल्पना भी दुरूह हो रही है।[1] रवीन्द्र ने इस वसुंधरा के प्रति उस तीव्र अनुराग की अभिव्यक्ति की थी जिसके

---

१. एखाने आकाश आने न माटिर काछे,
एखाने केवल आकाशेर दिके केवल दु'हात
बाड़ानो आछे।
दूरि हाते यदि ओ-नील सागर येके,
दूरेर रंग कोनो मते धरे चोखे दुले मिटे दुखे—
तबे मने हय, मनपरिनीत स्निग्ध सीमानार
भरसो माटिरे की करे लिखेछो, विंदु विंदु जला जय।

—प्रमथेन्दु।

सामने स्वर्ग भी तुच्छ था। उसी वसुन्धरा में नवीन कवि को ऊसर, कृपण और रूखा मैदान दिखाई देता है। इस धरती पर छीना-झपटी करके अधिक से अधिक पानेवालों का ही राजपाट है। इस मिट्टी के गेहुँए रंग में नवीन कवि भिक्षा की भाग्य-लिपि पढ़ता है। इस धरती के मानव का उद्यम भी आकाश तक पहुँचने में असमर्थ प्रतीत हो रहा है क्योंकि इस मिट्टी के बंधन उसे खींच लेते हैं।[1] इस प्रकार उद्यम करते करते सारा जीवन बीत जाता है फिर भी ऊपर की मंजिल की सीढ़ी नहीं मिलती। फिर भी धरती आकाश को छूने के लिये दोनों हाथ बढ़ाये ही रहती है।[2] अजित दत्त की 'ऊर्ध्वबाहु' शीर्षक कविता में स्पष्ट ही मनुष्य इस धरा से संतुष्ट नहीं है, फिर भी उसे अपने उद्यम का पूरा भरोसा नहीं है। वह अन्याय, शोषण, रूक्षता से भरे मैदान से वितृष्णा भी व्यक्त करता है। इस पृथ्वी में अब वह रहस्यमय, विलक्षण सौन्दर्य नहीं है जिसका दर्शन रवीन्द्र ने

१. एखाने रुक्ष उपर कृपण माठ,
काड़ाकाड़ि करे जारा बेशी नेये तादेरि राज्यपाट।
ए माटिर रंगे गेरुया छोपले भिक्षा भाग्यलिपि
अतइ उँचुने उठि, बड़ जोर सेइ वल्मीक ढिबि।
दूर जेते गेले पिछे माटिर-बंधन देय टान,
बाहर घरेर अंधकूपेइ मानुष भाग्यवान।

—ऊर्ध्वबाहु।

२. सारा जीवन खुँजे ओ मेलेना उपरतलार सिँड़ि,
आकाश छोंयार मत उँचु नेइ कोनो काचनगिरि।
तबुओ ऊर्ध्वे केवलि उँचुने टाने,
क्षणस्थायार मुछे दिते चाय गृहस्थालिर माने।
जानि ओ-स्वर्ग आसे ना धरार काछे,
तबुओ एखाने आकाशेर छुँते दु'हात बाड़ानो आछे।

—ऊर्ध्वबाहु।

किया था। शब्दचयन में भी जीवन की रूक्षता और नीरसता ही व्यक्त होती है। ये शब्द भी अपेक्षाकृत अधिक जनसामान्य में प्रचलित ही हैं।

इस नवीन कविता में कभी कभी रवीन्द्र की दार्शनिकता, आध्यात्मिकता का दर्शन हो जाता है; किन्तु विलक्षणता यह है कि इनमें कवि व्यक्त भावनाओं एवं विचारों से तटस्थ जैसा दिखाई पड़ता है। ऐसा मालूम होता है कि जैसे कवि चिन्तन के गंभीर क्षणों में हो कर गुजर रहा है और अपनी बात को कुछ विराट् प्रतीकों, कल्पनाओं के माध्यम से व्यक्त कर रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन कविताओं में उसकी वैयक्तिक रुचि, प्रवृत्ति आदि की अभिव्यक्ति नहीं मिली है। इनमें हमें केवल एक सत्य मिलता है जिसमें रमणीयता और सुन्दरता रवीन्द्र के सत्य जैसी नहीं है। इनमें "मनुष्य-यात्री मृत्यु और जीवन की कालिमा एवं सफेदी को हृदय में चित्रकर इस पृथिवी देश में आता है। कंकाल, बुझे हुए अंगारे, स्याही, चतुर्दिक व्याप्त रक्तपात और उनके भीतर अनन्त करुण लालिमा के चिह्न इन मनुष्य-यात्री के पूर्व यात्रा के चिह्न हैं। यह मनुष्य यात्री ग्लानि, प्रेम, क्षय को निरंतर साथ लिये चलता चला जा रहा है, नदी के हृदय की तरह उसका भी हृदय भागता चला जा रहा है। मर्त्यलोक के यात्रियों की नई नई भीड़ के साथ चलनेवाले इस मानव-यात्री के हृदय में गति का गान है, भरपूर आलोक है; यह मानव-यात्री शाश्वत भी है, फिर भी यह निरुपाय है।"[1] यह सब सत्य है, घोर सत्य है किन्तु इसमें वह जीवन्त आशा, सुख-दुःख दोनों

१. मृत्यु आर जीवनेर सादा आर काला
हृदये बाँधिये निये यात्री मनुष
एसेछे ए पृथिवीर देशे,
कंकाल अंगार कालि चारि धारी दिके रक्तेर लिखन
भीतरेर करुण स्वाक्षर चिह्न देखे
एइ चिने ए पूर्वेर मिछेर करुण चिह्न देखाने लक्षन।

में प्यारी-प्यारी लगनेवाली रमणीयता, मनुष्य के उद्योग की महानता, चिर-नवीनता कहाँ है ? स्वर्गीय जीवानंददास की 'जात्री' शीर्षक कविता से कुछ ऐसी ही जिज्ञासा मन में उठती है। इसी प्रकार विश्व बंद्योपाध्याय की 'समयेर पाखी' रचना में भी बुद्धिवादी चिन्तन सजग दिखाई पड़ता है। कुछ नवीन अछूते उपमान मिलते हैं, नवीन अछूती कल्पनाएँ भी मिलती हैं। "यह कालपक्षी नित्य ही आता है, चला जाता है, किंतु मानव नित्य उसे देखकर भी पहचान नहीं पाता है। यह कालपक्षी बलाका है या गिद्धों की पंक्ति ? या ग्रीष्म, वर्षा, शरत, हेमंत और वसंत के रूप में सृष्टि की अग्नि के आदिम स्फुलिंग हैं ? उन काल-पक्षियों के गले में छहों ऋतुओं की फूलमालाएँ निरंतर डोलती रहती हैं। क्या उनका निर्माण सूर्य की किरणों के प्रखर गतिवेग से हुआ है ? प्रतिदिन एक पक्षी उड़कर आता है, लौटकर वापस चला जाता है। मनुष्य की आयु दो चंचल डैनों के बीच में थर-थर काँपती है। उसके एक पंख में दिन का आलोक फूट जाता है और दूसरे पंख में रात घिर आती है। दिन और रात के मिलते ही प्रवाह के वेग में ये कहाँ जाकर खो जाते हैं ? जिनको पार करने के लिये ये आते हैं वे दिन मरुवत् हैं। सभी का जीवन इसी प्रकार मानों निश्चित नपा नपाया-सा चल रहा है।[1] मनुष्य इस प्रकार निरंतर रहस्य-

---

.......नव नव जात्री देर हाथे मिशे जाय
प्राणलोक जात्री देर भिड़,
हृदय चलार गति गान आलो रमेछे अकूले
मानुषेर पटभूमि हयतो या शाश्वत जात्रीर। ——जात्री।

१. माथाय ओदेर नील आकाशेर छाति
उड़े चले ओरा उदयेर मेघे अन्तेर दिके गेज
मानुष देखेछे नित्य तबुओ मानुष पायनि खोंज।
एरा कि बलाका ? एरा शकुनेर पाँति ?
एरा कि आदिम स्फुलिंग सेइ सृष्टिर आगुनेर,

मय रूप में उड़नेवाले समय-पक्षी को समझ नहीं पाता, पहचान नहीं पाता, फिर भी इतना सत्य है कि समय-पक्षी तो उड़ता ही है, आता है, चला जाता है। क्या यही सृष्टि है? यंत्रवत् क्रमशः नीरस क्रियाशीलता, गतिशीलता ही क्या सृष्टि का सबकुछ है? समय-पक्षी कहाँ से आता है, क्यों आता है, कहाँ जाता है, क्यों जाता है—ये सब समाधान-योग्य प्रश्न नहीं हैं। क्या मनुष्य सदैव इनके लिये जिज्ञासु बना रहेगा, बच्चों की तरह उत्सुक बना रहेगा? अभी तो बुद्धि यहीं फुदती है।

नवीन बंगला कविता की यह नवीन दृष्टिभंगी और शैली केवल मानव, धरती और सृष्टि के शाश्वत प्रश्नों, विधानों के विषय में ही

ग्रीष्म, वर्षा, शरत् एव हेमन्त फाल्गुने !
समय ओदेर अविराम दोले षड्ऋतु फूलमाला,
रवि शुक्लर सर गतिवेग ओदेर डाना !
प्रत्यह एक पाखि उड़े आसे
प्रत्यह चले जाय,
मानुषेर आयु धरे धरे बाँधि
चंचल दुडानाय,............
एकटि पाखाय दिवालोक उड़े
आरेक पाखाय रात झरा पड़े
दिने राते मिले प्रवाहेर तोड़े
कोथा नेमिये हाराय ।
प्रतिदिवसेर मरुपार हते
एकटि पाखर एरा दले दले......
...यवार जीवन ए मावेद मेन
पश्चते निरत माता ।
मनेर मानता मेदिये दिलेइ
सब पड़े जाय पाता ।

—छन्देर पाखि ।

नहीं मिलती। मानव-जीवन के चिर साथी प्रेम, संयोग, वियोग आदि के विषय में भी इनका दर्शन मिलता है। आज का कवि जब विरह में स्मरण का वर्णन करता है तब साड़ी के आँचल, खिले फूल जैसा सौंदर्य, आदि उसको सान्त्वना नहीं देते और न उनमें उसे कोई ऐसा तत्त्व ही दिखाई पड़ता है। वह प्रेम के कारण नहीं, अपितु अपनी रुचि के कारण ही अपनी बात कहता है—"यदि तुम प्रेत होकर फिर हमारी धरती पर जाड़ों का मौसम लाओ तो आकर यह अवश्य देखती जाना कि कैसी 'अनील' आग में यह देह दिनरात निर्लज्ज होती जाती है और जिसे तुम प्यार करती थीं वह (देह) आज कहाँ है?"[१] इस रुचि की विलक्षणता के कारण ही प्रेत के रूप

१. तोमार नाम त नय साड़िर आँचल
टेने निये मोछा जाबे या ओनेर जल,
अश्रुर छवि, चोखे झलमल फोटा।
फोटा फुलेओ हत जदि छिंड़े निये बोटा,
हृदय देया जेतो सुरभित श्वास।
नाम नय आकाशेर कोन नामी तारा,
ताकिये जे थाकि कत दिनेर पाहारा
पार हये पाय एक कवोष्ण आश्वास
मरण-मेरुर शीते मेरुण आलोर
आरोपार भिड़े,
आर आछे से कि मोर!
प्रेम नय शान्ति शालीनता आमादेर,
ए कथा बलार आछे। जदि एसो फेर
पृथिवी ते दिते शीत प्रेत हये आज,
कि अनील आगुने जे ए देह निलाज
दम अहरह, निजे देखे जाओ एसे।
ते कोथाय आर रेखे गेछो भालबेसे। —स्मरणे।

में कवि उस प्रेयसी का इस धरती पर अवतरण चाहता है जो (केवल ?) शरीर को प्यार करती थी। संजय भट्टाचार्य की इस 'स्मरणे' शीर्षक कविता में प्राची, उषा, अरुण आदि के स्थान पर 'मेरुण आलो' (मेरु का आलोक), 'अरोरा' का ही स्मरण किया गया है। प्राचीन उपमान अब अतिप्रयोग से, रुचि-परिवर्तन से अशक्त से हो गये हैं। आज के बुद्धिवादी स्थूल–भूत–जड़धर्मी पाठक के लिये ये निर्जीव हैं। उनमें अब अधिक दिनों तक मनुष्य के लिये उपयोगी रहने की शक्ति नहीं रह गई है अथवा पाठक की संवेदनशीलता में अभाव का ज्वार आ गया है। कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता।

ऊपर का परिचय बंगला की नवीन कविता की कुछ विशेषताओं की ओर केवल संकेतमात्र के लिये दिया गया है। अभी तक इस कविता के जो रूप आलोचकों ने देखे हैं उनके आधार पर कवियों के स्थूल वर्गों का विचार भी किया गया है। हम पहले ही कह चुके हैं कि अभी भी, इस नवीन कविता को देखते हुए भी, रवीन्द्र को एक जीवित शक्ति के रूप में स्वीकार किया जाता है। अतः वर्गनिर्णय भी रवीन्द्र को ध्यान में रखकर किया गया है। इन कवियों में एक वर्ग यदि रवीन्द्र की पदावली और भाव-धारा दोनों की रक्षा करता है तो दूसरा शब्दावली–पदावली का अनुसरण करता हुआ भी रवीन्द्र की आध्यात्मिकता एवं रहस्यवाद का तीव्र विरोधी है। कुछ लोग इन्हें नव्य स्वच्छन्दतावादी कहते हैं। ये लोग प्रतिमा-सृष्टि (इमेज मेकिंग) पर विशेष जोर देते हैं। तीसरा वर्ग भौतिकवादी कवियों का वर्ग है जिनके ऊपर मार्क्सवादी विचारधारा का पूरा प्रभाव है। सभी प्रकार के कलाकारों को मार्क्सवादी समाज-व्यवस्था के निर्माण में एक श्रमिक के रूप में स्वीकार कर यह वर्ग अग्रसर होता है। इनका मार्क्सवादी दर्शन पूर्ववर्ती जीवनदर्शन का विरोधी लगता है। कभी कभी इस वर्ग की कविताओं को शुद्ध-कविता न कहकर शुद्ध राजनीतिक प्रचार मात्र कह देते हैं। इनमें अभी अनिश्चितता है, उद्विग्नता है। इनमें रवीन्द्र-

काव्य की प्रतिक्रिया भी है। बंगला कविता के इस परवर्ती विकास को देखकर कुछ लोग इसे 'भूतों का उपद्रव' कहते हैं, कुछ आश्चर्य और विस्मय से मूढ़ होकर इसे समझने का प्रयत्न करते हैं और कुछ लोग इस कविता के स्थिर स्वर, रंग, रूप की अभी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ

(मराठी)

श्री सुरेशचंद्र त्रिवेदी, एम. ए.

(ऋण स्वीकार— प्रो. वि. पा. दांडेकर, प्रो. टी. पी. चिदानंद,
प्रो. कुसुमबहन देसाई, और श्री ताराबहन
आगरकर)

मराठी की आधुनिक कविता का प्रारंभ श्री केशवसुत से ही माना जाता है। श्री केशवसुत से लेकर श्री मर्ढेकर तक की कविता अर्वाचीन कविता है और श्री मर्ढेकर से मराठी नयी कविता (अत्याधुनिक अथवा प्रयोगवादी कविता) का प्रारंभ होता है। कालक्रम से देखा जाय तो स्वातंत्र्यप्राप्ति के पूर्व की कविता 'अर्वाचीन कविता' है, तो ई. स. १९४७ से आगे की स्वातंत्र्योत्तर कविता 'अत्याधुनिक कविता है।

श्री केशवसुत का मराठी में वही स्थान हो सकता है जो हिन्दी में श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं गुजराती में कवि नर्मदाशंकर का है। इन तीनों के समय में थोड़ा बहुत अंतर होते हुए भी उनके कार्य, विचार, प्रवृत्तियों, एवं सामयिक परिस्थितियों में बहुत कुछ साम्य है। यह साम्य आकस्मिक नहीं है। उस समय की देशव्यापी सामाजिक एवं राजकीय परिस्थितियाँ ही इसका कारण है। तीनों ने १९ वीं शती के उत्तरार्द्ध में साहित्य क्षेत्र में पदार्पण किया। सन् १८५७ के स्वातंत्र्य-संग्राम की विफलता के बाद व्यवस्थित ढंग से देश की स्वतंत्रता का प्रयत्न ही उस युग की मुख्य चेतना थी। संयोग की बात है कि मराठी की आधुनिक कविता का प्रारंभ भी उसी वर्ष (सन् १८८५) से होता है, जिस वर्ष 'कांग्रेस' की नींव पड़ी।

मराठी की नवीन कविता का परिचय देने के पूर्व मराठी की प्राचीन एवं नवीन कविता के अंतर को स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। जहाँ प्राचीन कविता अपने सामान्य स्वरूप में भी ५० या ६० पंक्तियों से कम न होती थी वहाँ नवीन कविता अपेक्षाकृत बहुत छोटी होती है। प्राचीन मराठी कविता के प्रमुख विषय थे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, उपदेश, संसार की क्षणभंगुरता, आदि। आधु-

निक कविता इन बंधनों से सर्वथा मुक्त है। आज की कविता में तो ककड़ी, गाजर से लेकर कामिनी तक सब प्रकार के विषय पाये जाते हैं। उसने अब पौराणिक विषयों को छोड़ दिया है। यदि लिया भी है तो सर्वथा नये रूप में, नयी सूझ-बूझ एवं नवीन विन्यास के साथ। प्राचीन मराठी कविता वस्तुनिष्ठ अधिक थी तो आधुनिक कविता में व्यक्ति-निष्ठता अधिक दृश्यमान होती है। आधुनिक कविता ने अपूर्व वैविध्य ग्रहण कर लिया है। उसमें स्वच्छंदता, प्रणय-प्रधानता, राष्ट्रीयता, क्रांति, ग्राम-जीवन का निरूपण, प्रगतिवादी भावनाएँ, प्रयोगवादी नवीनता एवं लोकगीत आदि सब प्रकार की प्रवृत्तियों के वैविध्य का समावेश हुआ है। इन सब प्रवृत्तियों की परिचायक भिन्न-भिन्न धाराएँ नवीन कविता के प्रवाह से प्रवहमान हुईं। नवीन कविता की कुछ अपनी उपलब्धियाँ भी हैं। श्लोक, आर्या, ओवी, अभंग,[1] आदि यदि प्राचीन कवियों के प्रसिद्ध वृत्त हैं तो चतुर्दशपदी (सॉनेट), गजल, तांबे पद्धति के गीत, भावगीत, लावणी आदि, मराठी की आधुनिक कविता की अपनी पूँजी है, भले ही इनका जन्म अंग्रेजी या फारसी के प्रभाव से क्यों न हुआ हो? छंद के विषय में आधुनिक कविता निरंतर विकासशील रही है। संस्कृत के वर्णिक छंदों से मराठी कविता का प्रारंभ हुआ और क्रमशः मात्रिक छंदों एवं गेय पदों के सोपान पर उतरती हुई आज यह 'मुक्त छंद' की समतल भूमि पर अवतीर्ण हो गई है। अब कवियों का मन श्लोक, आर्या, ओवी, अभंग, केशवकरणी भूपति, चन्द्रकान्त, हरिभगिनी, लवंगलता, पादाकुलक आदि वृत्तों में विशेष नहीं रमता। चाहे उसे प्रगति कहें या अधोगति। 'तुक' का आग्रह भी अब शिथिल पड़ता जा रहा है। अतुकान्त रचना का श्रीगणेश स्वयं केशवसुत ने ही कर दिया था, किन्तु वे इसमें सर्वथा सफल नहीं रहे। इस युग के प्रारंभ में ही कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि का

१. सुश्लोक वामनाचा आर्या मयूरपंतांची
ओवी ज्ञानेशाची अभंगवाणी तसीच तुकयाची।

मराठी अनुवाद एक विशेष उल्लेखनीय घटना है जिसका प्रभाव मराठी की आधुनिक कविता पर भी पड़ा। कविता में गद्यात्मकता आने लगी। परिणामतः गद्य-गीत का जन्म हुआ। आधुनिक कविता ने अकृत्रिम, सीधी-सादी, सरल, स्पष्ट भाषा में हृदय की बात कहने की प्रवृत्ति को अधिक महत्व दिया। अंग्रेजी-शिक्षा एवं गांधीजी के प्रभाव से आधुनिक मराठी कविता संस्कृत की पकड़ से मुक्त हुई। इनके अतिरिक्त, क्रांति के विचार, सुधारवादी भाव, अंग्रेजी के अध्ययन-अध्यापन का प्रभाव, कला के लिए कला की प्रतिष्ठा, इतिवृत्तात्मकता के स्थान पर भावात्मकता की प्रतिष्ठा, आशावाद, अक्षुण्ण-वैयक्तिकता, नैराश्यजनित पलायनवाद आदि नवीन मराठी कविता की वे विशेषताएँ हैं जिनका महत्व भुलाया नहीं जा सकता।

मराठी की आधुनिक कविता में श्री केशवसुत तथा उनके समकालीन कवियों का प्रथम स्थान है। श्री केशवसुत अर्वाचीन मराठी कविता के जनक थे। कालिदास एवं वर्डस्वर्थ का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा है। ऐतिहासिक महत्व के अतिरिक्त विषय-वैविध्य एवं सॉनेट, गजल आदि नवीन पद्धतियों में योगदान देने के कारण उनका नाम मराठी के आधुनिक काव्य के आद्य प्रणेता के रूप में अमर रहेगा। संस्कृत के उत्तान शृंगार से प्रभावित उनकी प्रणयप्रधान कविताओं पर बाद के कवियों एवं आलोचकों ने 'स्त्रैणता' का आरोप किया। आधुनिक मराठी के प्रारंभिक कवियों में श्री नारायण वामन टिळक का नाम विशेष उल्लेखनीय है। गोल्डस्मिथ के 'डेजर्टेड विलेज' के मराठी भाषांतर के अतिरिक्त प्रेम, सुधार, स्त्री-दाक्षिण्य आदि उनकी कविता के प्रमुख-विषय रहे। 'अभंगाञ्जलि', 'ख्रिस्तायन', 'वनवासी फूल,' भजनसंग्रह, 'ब्रिटेनिया,' टिळकांची कविता आदि उनकी रचनाएँ हैं। केशवसुत की अपेक्षा उन्होंने बहुत अधिक लिखा है। वे कवि, नाटककार, कहानीकार एवं उपन्यासकार भी थे। 'माझी भार्या' उनकी दाक्षिण्ययुक्त प्रेम की सुंदर कविता है। श्री माधवानुज

प्रखर रूढिभंजक एवं चिंतनशील कवि थे। उन पर अंग्रेजी एवं बंगला का विशेष प्रभाव पड़ा है। 'दीपविसर्जन', 'कुबडीतीर्थ', 'दगड़ फोड्यानां', 'कवि आणि कोकिल' आदि उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। हिन्दी के कविवर माखनलालजी चतुर्वेदी एवं श्री माधवानुज में पर्याप्त साम्य पाया जाता है। श्री दत्तात्रय घाटे मराठी के एक प्रतिभा-संपन्न कवि थे। मराठी काव्योद्यान की यह कली यदि असमय में (२४ वर्ष की अवस्था में) ही न मुरझा गई होती तो उनकी प्रखर प्रतिभा और भी निखर उठती। प्रेम और विरह की दृष्टि से उनकी तुलना हिन्दी के 'प्रसाद' एवं गुजराती के कवि 'कलापी' के साथ की जा सकती है। 'लाड़के', 'सुमनमाले', 'विनवणी', 'असंतुष्ट-पति', 'मित्रविहगा', 'सायंकाल', 'मुग्धकलिका' एवं 'अर्धविकसित-कली' उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। श्री गोविंदाग्रज एवं उनके सम-कालीन कवियों का स्थान केशवसुत संप्रदाय के ठीक बाद में है। 'एकच प्याला' के सुप्रसिद्ध लेखक श्री रामगणेश गड़करी उर्फ गोविंदा-ग्रज नाटककार के अतिरिक्त एक सुप्रसिद्ध कवि भी थे।

'फुटकी तपेली', 'कलगीचें गाणें', 'विचार', 'दसरा', 'प्रेम आणि मरण' आदि उनकी रचनाएँ हैं। वे मराठी के रोमांटिक कवि थे। साथ ही वे बालकराम के नाम से हास्य-व्यंग्य-विनोद भी लिखा करते थे। प्रसिद्धि उन्हें नाटककार 'गड़करी' के रूप में ही विशेष प्राप्त हुई। प्रेमपूर्ण कविताओं के कारण उन्हें 'प्रेमाचा शाहीर' नाम की पदवी दी गई थी। भाषा पर उनका अपूर्व अधिकार था। कविता के क्षेत्र में उन्होंने केशवसुत की परंपरा का निर्वाह किया। श्री एकनाथ पांडुरंग रेंदाळकर मराठी के प्रसिद्ध अतुकांत कवि थे। 'कवि आणि जग', 'सर्गी उन्नति', 'उलटी सृष्टी' आदि उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। बालकवि त्र्यंबक बापूजी ठोमरे मराठी के प्रकृति के प्रसिद्ध कवि हैं। आप बड़े रोमांटिक कवि थे। प्रेम-काव्य की अपेक्षा शिशुगीतों के कारण आप अधिक प्रसिद्ध हैं। आपको मराठी कविता का 'कीट्स' कहा

जाता है। आपने १५० कविताएं लिखीं जिनका संपादन श्री निफाड़कर ने 'बालकविची कविता' नाम से किया है। श्री नारायण मुरलीधर गुप्ते बहुत कम कविताएँ लिखकर भी अत्यधिक प्रसिद्ध हुए। वे एक उच्च-कोटि के कवि थे। 'फुलांची ओंजळ' आपकी स्फुट रचनाओं का संग्रह है। आपने जीवन में ५० के आसपास कविताएँ लिखी हैं। आप 'बी' कवि के नाम से प्रख्यात थे। 'कमला' उनकी एक प्रसिद्ध रचना है। 'वन्य पुष्पें', 'मंगळकाळ', 'मघमाशी', 'निर्झर' आदि कृतियों द्वारा प्रसिद्ध कवि श्री ना. ग. नवरे भी अपने समय के एक अच्छे कवि थे। श्री नरहर शंकर रहाळकर अपनी 'पुष्पांजलि' द्वारा नाम कर गये।

रविकिरण मण्डल तथा अन्य कवि:- ई. सन् १९२३ में पूना में स्थापित इस मण्डल में अनेक कवि प्रति रविवार को एकत्र होकर गोष्ठियाँ किया करते थे; किन्तु अंत में श्री माधव जूलियन, श्री यशवंत एवं श्री गिरीश केवल ये ही तीन कवि रहे। श्री माधव जूलियन फारसी के अच्छे विद्वान् थे और उन्होंने फारसी छंदों का काफी प्रयोग किया है। उमर खैयाम की रुबाइयों का मराठी में अनुवाद करने के कारण उन्हें मराठी का खैयाम कहा जाता है। दूसरी ओर अंग्रेजी के प्रभाव एवं 'सॉनिट' के सफल प्रयोग के कारण उन्हें मराठी का बायरन कहते हैं। इन्होंने 'गज्जलांजलि', 'विरहतरंग', 'स्वप्नरंजन', 'नूटलेले दुवे', 'नकुलालंकार' आदि रचनाओं द्वारा अमरत्व प्राप्त किया। श्री शंकर केशव कानेटकर 'गिरीश' ने 'वीणाझंकार', 'अभागी कमल', 'आंबराई', 'कला',' कांचन गंगा', 'फलभार', 'मानस मेघ' आदि रचनाओं द्वारा बड़ा नाम कमाया। श्री यशवंत पेंढारकर मराठी के एक उच्च-कोटि के कवि हैं। अभी अभी नवीन महाराष्ट्र राज्य सरकार ने आपको 'महाराष्ट्र कवि' की उपाधि से विभूषित किया है। आपके १४ काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'मित्रप्रेम रहस्य', 'यशवंती,' 'इंदुकला', 'जयमंगला', 'बंदीशाला' आदि उनकी सुंदर कृतियाँ हैं। रविकिरण मण्डल के इन नये कवियों के साथ साथ केशवसुत-परंपरा

के कवि भी पाये जाते हैं। कुछ कवियों ने केशवसुत-संप्रदाय की कविताओं पर परिहास-काव्य (पैरोडी) भी लिखे। परंपरा का पालन करने वाले थे श्री ह. स. गोखले। इनका एक स्फुट (फुटकर) भाव-गीतों का संग्रह 'कांहीतरी' प्रगट हुआ है। पैरोडी लिखने वालों में प्रमुख हैं—श्री प्रह्लाद केशव अत्रे। वे हास्यरस के प्रसिद्ध लेखक एवं कवि हैं। नाटककार के रूप में भी वे विशेष प्रसिद्ध हैं। 'झेंडूची फुलें' उनकी विनोदपूर्ण कविताओं का संग्रह है और 'गीत गंगा' फुटकर कविताओं का संग्रह है। श्री दि. गं. केलकर, श्री ग. ह. पाटील, श्री वा. भा. पाठक, श्री तळवळकर, श्री केळकर आदि इस संप्रदाय के कवि हैं।

श्री अनिल (आत्माराम रावजी देशपाण्डे) स्वच्छंदता धारा के प्रमुख पुरस्कर्ता हैं। चिरप्रसन्न व्यक्तित्व एवं आशावाद लिए हुए यह मस्त कवि अपनी 'चिर-यौवन' कविता द्वारा हमारी रगों में उष्णरक्त का संचार कर देता है। ताजापन, आशा एवं उत्साह का जैसा चित्रांकन उनकी कविता में पाया जाता है वैसा मराठी कविता में अन्यत्र दुर्लभ है। उनका आशावाद पग-पग पर मिलता है—

फिरुन वर्षचक्र हे पुढे पुढे च जातसे
दिसी निसी नि चालली हि लोटली जरी दिसे
असे तरीहि गोठली न जीवनांतली उषा
तसा च रंग संग, तीहि वृत्ति गुंगली तशा
अजून उन रक्त हे भरे नसानसांतुनी।[1]

निराशा, घुटन, विद्रूपता आदि उनसे कोसों दूर हैं। उनका आशावाद निरन्तर प्रगतिशील होते हुए भी आडम्बरहीन है। 'काल को संबोधित करते हुए कवि कहता है—

१. वर्षचक्र आगे ही आगे बढ़ता चला जाता है। हम धीरे धीरे बीस तीस एवं चालीस वर्षों के हो जाते हैं। उम्र बढ़ती रहती है, किन्तु फिर भी हमारे जीवन में स्थित उषा (स्फूर्ति) अभी लुप्त नहीं हुई। अब भी वही रंग है, अब भी वृत्तियों में वही है, अब भी नसों में उष्ण रक्त प्रवहमान है।

उषा ! तुझ्या मधे निवांत
आज चा अशांत मी
उषा ! तुझ्या मुळे जिवंत
आज चा निराश मी ।[१]

कृषक को धैर्य बँधाते हुए कवि की वाणी का आशावादी स्वर सुनिए—

भिऊ भिऊ भिऊ नका भिऊ भिऊ
उठारे उठारे सत्वर सत्वर तत्पर तत्पर पेरा पेरा
नवीं बीजे नव्य आशा धरा पेरेंव्हा पेरेंव्हा[२] (पेरेंव्हा)

एक उदाहरण उनकी प्रेम विषयक कविता का भी लीजिए:—

प्रीति तुझी माझी जरी रम्य फुल बाग
जगतीं जीवन आणि जगतांत जाग।
प्रीति तुझी माझी नाहीं निराळे पणाची
जगांतरल्या सुख-दुःखी मिळाले पणाची ।।[३] (प्रीति तुझी माझी)

उनकी कविता में अन्याय के विरुद्ध बुलंद आवाज एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान की घोषणा है। एक ओर प्रीति का मधुर नशा है तो दूसरी ओर पुनर्निर्माण का आवाहन। वे विदग्ध, रसिक, चिर-युवा एवं प्रसन्न व्यक्तित्वपूर्ण कवि हैं। 'फुलबाग', 'प्रेम आणि जीवन', भग्नमूर्ति', 'निर्वासित चीनी मुलास', 'पेरेंव्हा' आदि उनकी प्रसिद्ध कविताएँ हैं।

१. आज मैं संतप्त हूँ; पर हे कल, मैं तुझे पाकर स्वस्थ एवं शान्त बनूँगा। आज मैं निराश हूँ किन्तु तेरी आशा से मैं जीवित हूँ।

२. डरो मत, डरो मत, उठो, जल्दी से उठो। नयी आशा से उत्साहित होकर नयी धरती पर नये नये बीज बोओ। खेतों में हल चलाओ।

३. तुम्हारी और मेरी प्रीति एक सुरम्य पुष्पवाटिका है। हम जगत् में प्रेमपूर्ण एवं जाग्रत जीवन बिताते हैं। तुम्हारे और मेरे प्रेम में भेद-वृत्ति नहीं है। मेरा और तुम्हारा प्रेम सुख और दुःख से परे एकरूप की वस्तु है।

स्वच्छंदतावादी कवियों में दूसरे महत्वपूर्ण कवि हैं कुसुमाग्रज। 'एक च तारा समोरे आणिक पायतली अंगार' ऐसी घोषणा करनेवाले इस रौद्र रस के क्रांतिकारी कवि को पाकर मराठी की आधुनिक कविता का प्रवाह प्रेम और शृंगार से हटकर रौद्र रस में प्रवहमान होने लगा। 'काढ सखे गळ्यांतील तुझे चाँद्ण्याचे हात' [हे प्रिय अपने चाँदनी जैसे सुकोमल हाथ, गले से निकाल डाल] कहते हुए वे प्रिया की भुजाओं को हटा देते हैं। यह कवि वर्ग-विग्रह की नयी चिनगारी लेकर अवतरित हुआ है और उसी आग के रौद्र रूप से इनकी प्रणय-भावना भी दीक्षित हो गई है—

गमे की तुझ्या रुद्र रूपांत जावें
मिळोनि गळां घालुनियां गळा।
तुझ्या लाल ओठांतली आग प्यावी
अमर्याद मिठ्या, तुझी थोरवी अन्
मला ज्ञात मी एक धूलिकण
अलंकारायाला परी पाय तुझे
धुळीचेंच आहे मला भूषण।[1]

किन्तु 'विशाखा' के बाद कवि कुछ दूसरा ही रूप ग्रहण कर लेता है। 'युगांच्या श्रमांच्या श्रमें हा निवारा' कहते कहते उनकी नाव किनारे लग जाती है। उनके ठीक विपरीत श्री श्रीकृष्ण पोवळे की कविता में निराशा, कड़वाहट, अत्यंत अनास्था एवं निराशावादिता है। श्री वा. रा. कांत की कविता में आवेग, पराक्रमपूजा, त्याग एवं भविष्य के स्वर्णिम स्वप्न हैं। श्री वा. भ. बोरकर स्वच्छंदतावाद के एक प्रमुख कवि हैं। 'प्रतिभा' एवं 'जीवन संगीत' द्वारा बोरकर

१. तेरे इस रौद्र रूप में ही तेरे गले से गला लगाना चाहता हूँ। तेरे लाल होंठों की आग पीने की चाह होती है। तेरी असीमता और महत्ता से मैं परिचित हूँ। मुझे अपनी क्षुद्रता का भी ध्यान है कि मैं धूलिकण मात्र हूँ। तेरे पैरों को अलंकृत करने के लिए मैं धूलि में पड़ा हूँ, यह भी मेरा सौभाग्य है।

ने काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। उनकी कविताओं में प्रादेशिक वातावरण देखने को मिलता है। वे शब्दों के कुशल शिल्पी हैं। शब्दों के स्पर्श-सौंदर्य, नाद-सौंदर्य, लय-सौंदर्य और संगीत के वे कुशल पारखी हैं। उनका शब्द-संयोजन एवं चयन बड़ा अपूर्व होता है—

तुझे विजेचे चाँद पाँखरू दीप राग-गात
रचीत होते शयन महालें निळी चाँदरात। [१]
(जपानी रमदाची रात)

बोरकर संप्रदाय के अन्य उल्लेखनीय कवि हैं श्री शांता शेळके, कृ. ब. निकुंब, वि. म. कुलकर्णी। इनकी काव्यगत विशेषताएँ हैं—मधुर प्रीति की सुंदर अभिव्यंजना, उत्तेजनापूर्ण प्रकृति-निरूपण, विरह-व्याकुल मनःस्थिति का सुंदर चित्रण और राजकीय एवं सामाजिक परिस्थितियों के सफल चित्रण करने की क्षमता। इसी धारा की एक दूसरी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं—श्री मंगेश पाडगाँवकर, श्री वसंत बापट और श्री सदानंद रेगे। इनमें उत्कट भावचित्रण है एवं उन चित्रों में पाठकों के साथ तादात्म्य स्थापित करने की अपूर्व क्षमता है। श्री पाडगाँवकर की प्रसिद्ध कविता 'जांभळी वीज ये' में उन्होंने प्रतीक योजना द्वारा गूढ़, रम्य, एवं गंभीर भावस्थिति का निर्माण किया है। 'वीज' को उन्होंने एक चेतावनी और विकृति के प्रतीक के रूप में ग्रहण किया है। इस धारा के नवोदित कवियों में रचना-कौशल की दृष्टि से आरती प्रभु विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री प्रभु का विशेष झुकाव गूढ़ता की तरफ है। श्री म. म. देशपाण्डे की 'अंतरिक्ष फिरलों पण' कविता एक बहुत ही सफल एवं सुंदर रचना है। हमें इसमें उत्कट भावस्थिति के दर्शन होते हैं—

---

१. तेरी बिजली के गोले चाँद-पक्षी जैसे हैं, और दीपराग गाते हैं। वे शयन महल में नीली चाँदनी रात की रचना करते हैं।

अंतरिक्ष फिरलों पण गेली न उदासी
गेली न उदासी लागलें न हाताला
काहीं अविनाशी[1]......................

श्री इन्दिराबाई संत की कविता का प्रधान स्वर प्रेम है। विविध भावछटा, मधुर प्रेम की विलक्षण अभिव्यंजना और अमूर्त भावों को सफल एवं सुंदर ढंग से मूर्त करने की क्षमता उनकी काव्यगत विशेषताएँ हैं। मूक दुःख स्वयं उनकी तूलिका का स्पर्श पाकर मुखर उठता है—

कधीं कुठे न भेटणार
कधीं न काहीं बोलणार
कधीं कधीं न अक्षरांनि
मन माझे ओघणार[2] (मन)

प्रिय की प्रतीक्षा करती हुई उनकी वाणी सुनिए—

वाट पाहते तुझी अशी मी
वाटे वरी भावोत्कट होउन
वाटच होउन[3] (वाट पाहते तुझी अशी मी)

मराठी के 'भावगीतों' की परंपरा के प्रमुख प्रवर्तक श्री ग. ल. ठोकल हैं। 'मीठ भाकरी' उनके भावगीतों का संग्रह है। इस परंपरा के अन्य कवियों में उल्लेखनीय हैं—सर्वश्री सोपानदेव चौधरी, ना. घ. देशपाण्डे, वि. भि. कोलते, पां. श्री. गोरे, के. नारखेडे, ग. ह. पाटील, कवि सुरेश आदि। श्री नारखेडे का 'चंद्रकला' संग्रह भी विशेष प्रसिद्ध है।

---

१. समय अंतरिक्ष घूम चुका किन्तु मेरी उदासीनता कम न हुई। मुझे कुछ भी अविनाशी तत्त्व प्राप्त नहीं हुआ।

२. मेरा मन कभी शब्दों में अपनी बात नहीं कहेगा, न कभी कहीं मिलेगा, न कभी कहीं कुछ बोलेगा।

३. ऐसी मैं......तुम्हारी राह देखती हूँ। राह पर स्वत-विह्वल होकर स्वयं राह (रास्ता) बनकर तुम्हारी राह देखती हूँ।

मराठी की आधुनिक कविता राष्ट्रीय भावों से भी अछूती नहीं रह पायी है। राष्ट्रीय धारा के आदि प्रवर्तक हैं विनायक जनार्दन करंदीकर। श्री सावरकर की 'रानफुलें' बहुत प्रसिद्ध रचना है। श्री तिवारी के अनेक संग्राम-गीत उल्लेखनीय हैं। मराठी की क्रांति-काव्यधारा के मुख्य कवियों में श्री वा. रा. कान्त की 'रुद्रवीणा' और श्री कृष्ण पोवळे की 'अग्निपराग' प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। लावणी संप्रदाय के प्रमुख उल्लेखनीय कवि श्री माडगुळकर और श्री रा.ना. वढे ने लोकगीतों की लय में गंभीर एवं दिव्य शृंगारपूर्ण रचनाएँ की हैं।

नयी कविता अर्थात् प्रयोगवादी कविता :

मराठी की नयी कविता और कवियों के विषय में कुछ भी कहने के पूर्व यह अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि नयी कविता की जो निजी मौलिक विलक्षणताएँ एवं विशेषताएँ हैं उनका भी संक्षिप्त परिचय दे दिया जाय। भारतीय भाषाओं की कविता पर ही नहीं प्रायः विश्व की समस्त युद्धोत्तर कविता पर टी. एस. इलियट का प्रभाव पड़ा है। मानव की विचारप्रधान प्रकृति की विचित्रताओं और उसके विक्षुब्ध एवं विपण्ण जीवन की वैचित्र्यपूर्ण अभिव्यक्ति ने नयी कविता को जन्म दिया। नये कवियों ने अकृत्रिम एवं नग्न रूप में जीवन की सचाई को प्रकट करने का प्रयत्न किया। अभिव्यक्ति में चमत्कार लाने के लिये विराम-चिह्नों और मुद्रण के विचित्र ढंगों का सहारा लिया जाने लगा। प्रो. जोग ने मराठी की इस नयी कविता की कुछ विशेषताओं की ओर संकेत किया है—१. विषय एवं शैली की दुर्बोधता, २. अति-यथार्थवादिता, किञ्चित् नग्न यथार्थवादिता, ३. अभिव्यक्ति में चमत्कार लाने का प्रयत्न, ४. घोर व्यक्तिनिष्ठता; ५. मुक्तछंद का प्रयोग-छंदों के विषय में संपूर्ण स्वातंत्र्य, ६. मध्यवित्तीय समाज के सुख-दुःखों का यथार्थ चित्र देने के कारण अनियंत्रित, उग्र एवं असंयत, आक्रामक भाषा का प्रयोग। ७. अलंकार एवं प्रतीकों की साधनरूप में नहीं किन्तु साध्यरूप में योजना और इसके कारण दुरूहता, ८. यंत्रों के प्रति वैय-क्तिक प्रतिक्रिया।

मराठी की नयी कविता की दो प्रमुख धाराएँ हैं—एक व्यक्तिवादी, अहंवादी, निराशामूलक विद्रोह की विचार धारा और दूसरी दृढ़ आशा पर स्थित समाजवादी विचार धारा। शरच्चन्द्र मुक्तिबोध एक का नायक श्री मर्ढेकर को मानते हैं और दूसरी का स्वयं अपने को।

प्रो. जोग का नयी कविता विषयक उक्त अभिमत एकपक्षीय हो सकता है। नयी कविता के प्रवर्तक एवं पृष्ठपोषक श्री मर्ढेकर ने जोग के इस कथन को नयी कविता के स्वाभाविक विकास-स्वरूप के रूप में समझा है और नयी कविता का मार्ग प्रशस्त किया है।

मराठी की नयी कविता के जनक श्री मर्ढेकर ने अपने नवीन प्रयोग, नयी कल्पनाएँ, नये शब्द, नये प्रतीक एवं गूढ़ व्यंजना द्वारा नयी पीढ़ी को मुग्ध कर दिया है और पुरानी पीढ़ी को आश्चर्य में डाल दिया है। कारखाने के भोंपू को लक्ष्य कर वे कहते हैं—

काळ्या भयाण अंधारी
धपापते हे इंजिन
फुटे पिवळ्या पहाटी
आवरतो दैनंदिन भोंगा[1]

गंदी गलियों एवं मजदूरों की बस्तियों की संध्या का वर्णन भी देखिये—

जपचुनी पायी गर्द
इथे वस्तीत गल्लिच्छ
भों भों भुंके लालजर्द .. संध्याकाल
शत्रुं करोति कल्याणं दारिद्र्यं ऋण-संपदा
शुद्ध-बुद्धि विनाशाय भोंगा-कुत्री नमोऽस्तुते[2]

---

१. काली काली भयंकर अंधेरी रात में यह इंजिन चलता रहता है, और दैनी दैनी पीली सुबह में प्रतिदिन यह कारखाने का भोंपू चीखता रहता है।

२. इस गंदी बस्ती में ध्यानपूर्वक पैर रखना। इस गंदी बस्ती में स्थान स्थान संध्या कुत्ती की तरह भौंकती रहती है। (यहाँ संध्या को कुत्ती कहा गया है।) शत्रु का कल्याण करनेवाली, दरिद्र्य एवं ऋण देनेवाली, शुद्धबुद्धि का नाश करनेवाली इस भोंगा और कुत्ती को नमस्कार हो। [संस्कृत श्लोक की पैरोडी है।]

श्री पु. शि. रेगे अमूर्त भावों को मूर्त स्वरूप देने में बहुत ही सफल हुए हैं। अखंड प्रतीक-योजना द्वारा अपनी बात को अभिव्यक्त करने की कुशलता उन्हें प्राप्त है। 'उर्वशी' एक सुंदर प्रतीक-योजना है। श्री विंदा करंदीकर ने प्राचीन कथाओं में नयी सूझबूझ का विनियोग किया है। नवीन चिंतन एवं अर्थग्रहण के कारण उनकी रचनाएँ बहुत चमत्कारपूर्ण बन पड़ी हैं। 'दधीचि' के त्याग की उन्होंने जो परिहासपूर्ण व्याख्या की है वह द्रष्टव्य है—

खुळा दधीचि फसला देउन
आपुली हाडें असुर वधास्तव
ह्या वज्राने तेव्हाँ पासून
मानव आहे शापित मानव!
अमृत जावे फुटकी मधुनी[1]

'धोंड्या न्हावी', 'ईव्ह' आदि उनकी अन्य प्रतिभापूर्ण कविताएँ हैं। श्री शरच्चन्द्र मुक्तिबोध नयी कविता के एक दूसरे प्रवाह के प्रतिनिधि हैं जिनमें समाजवादी विद्रोह काम कर रहा है। 'नवी मळवाट' उनकी एक प्रसिद्ध रचना है। उनकी कविता श्री मर्ढेकर के समान उग्र एवं प्रभावशाली न होकर किञ्चित् प्रौढ़ दुर्बोध तथा शिथिल-प्रभाव है।

मराठी की आधुनिक एवं नयी कविता की संक्षेप में ये ही प्रवृत्तियाँ हैं। यही उसके स्वरूप एवं विकास का लेखा-जोखा है। प्रतिक्षण विकासोन्मुख इस कविता-धारा का भविष्यनिर्णय करना न केवल दुस्साहस ही होगा बल्कि अनधिकार चेष्टा भी।

---

१. असुरों के वध के लिए अपनी हड्डियाँ देकर भोले भाले (मूर्ख!) दधीचि फँस गये। उसी वज्र से उसी दिन से मानव अभिशप्त हो गया, जैसे अंजलि से अमृत गिर गया हो।

आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ

(राजस्थानी)

श्री भूपतिराम साकरिया, एम. ए., बी. एड्.

तलवार और कलम का सुंदर समन्वय राजस्थान की अपनी सांस्कृतिक विशेषता है। एक ओर जहाँ राजस्थान ने अगणित बलिदानों द्वारा भारतीय स्वतंत्रता का दीप निरंतर प्रज्वलित रखा है वहाँ दूसरी ओर साहित्य-प्रदीप की ज्योति को भी अविच्छिन्न रूप से जगाये रखने में वह अग्रणी रहा है। हिंदी साहित्य का आदि काल ओजपूर्ण 'डिंगल' काव्य से ही गौरवान्वित है। भक्ति और रीति काल में भी राजस्थान के कवियों ने तत्कालीन काव्य-भाषा 'पिंगल' (ब्रजभाषा) के साथ साथ 'डिंगल' के माध्यम से भक्ति और शृंगार की कोमल और मधुर भावनाओं को अभिव्यक्ति दी है। अनेक राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के कारण आज राजस्थानी को देश के संविधान में स्थान नहीं मिला है। देश में बढ़ती हुई संकीर्णता के युग में राष्ट्रहित के लिए अपनी भाषा का बलिदान कर राजस्थान ने अपनी उदारता और कलेवर की श्रीवृद्धि करते हुए भी यहाँ के साहित्यकार अपनी मातृभाषा को भूले नहीं हैं—और भूल भी नहीं सकते। अंतःकरण की उमड़ती हुई भावनाओं को मातृभाषा में सहज ही अभिव्यक्ति मिल जाती है। मुझे हर्ष है कि इस विद्यापीठ ने राजस्थानी की उपेक्षा नहीं की और मुझे राजस्थानी की 'आधुनिक कविता की प्रवृत्तियों' का परिचय देने का आदेश दिया है। सुविधा की दृष्टि से हम प्रथम महायुद्ध से आज-तक लगभग ५० वर्षों के काल को 'राजस्थानी कविता का आधुनिक काल' कह सकते हैं।

राजस्थान की प्राचीन वीर-काव्य परंपरा को राजस्थानी कवि आज भी निभाये जा रहे हैं। वीरकाव्य के अर्वाचीन कवियों में स्व. हिंगलाजदानजी कविया का प्रमुख स्थान रहा है। उनका 'मृगया मृगेन्द्र' एक प्रसिद्ध काव्य है। ठाकुर केसरसिंह ने तलवार से किस

प्रकार सिंह का शिकार किया था—यही इसका कथानक है। साहित्य में 'रजवट' की प्रेरणा देनेवाली महाकवि सूरजमल से चली आई हुई 'वीर सतसई' की परंपरा में मेवाड़ के श्री नाथूदान महियारिया का नाम लिया जा सकता है। इनकी 'वीर सतसई' में वीर-वीरांगनाओं, कायरों आदि की हृद्गत सूक्ष्म भावनाओं का अत्यन्त सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है:—

खाग कलम कागद धरा, स्याही रगत बणाय ।
पिउ नित लेई नवलखां, कंकू पत्र लगाय ।।

(वीरांगना अपने प्रियतम की युद्ध-वीरता का वर्णन करती है—युद्ध उनके लिए कौतुकमात्र है, वे खड्ग रूपी लेखनी द्वारा पृथ्वी रूपी पत्र पर रक्त की स्याही से कुंकुमपत्री लिखवाकर नित्य ही नौ लाख युद्ध की शक्तियों को निमंत्रित करते हैं।)

समयपरिवर्तन के साथ युद्धवीरता के राग गानेवाला कवि अहिंसक-वीरता का प्रेमी बन जाता है:—

रण चढ़िया पट पहरियां, आयध लियो न हेक ।
सिर हंदा पट ऊपरां, धारूं बगतर केक ।।

कवि यह भी अनुभव करता है कि वीरता और भक्ति किसी जाति विशेष या पुरुष विशेष की बपौती नहीं है:—

जो करसी जिणरी हुसी, आसी बिन न्यौतीह ।
ए नेह किणरा बापरी, भगती रजपूतीह ।।

वीर-काव्य परंपरा में दूसरे प्रसिद्ध कवि हैं सोन्याणा के स्व. केसरीसिंह बारहठ। प्रतापचरित्र, राजसिंहचरित्र, दुर्गादासचरित्र आदि उनके उल्लेखनीय चरित-काव्य हैं। इनके अतिरिक्त भी मनोहर-शर्मा कृत 'अरावली की आत्मा' और श्री नारायणसिंह भाटी कृत 'दुर्गादास' जैसे प्रशस्ति काव्यों में वर्णनरूप में भावात्मकता का ही निर्वाह पाया जाता है। श्री भाटी आधुनिक मुक्त-छंद में इन शब्दों में दुर्गादास की प्रशस्ति लिखते हैं:—

धीरज न इतौ धारे हियो
कै आसरा थारौ जस दरसाऊँ प्रबंध माही,
बँधियो न किणो बंधेज मन-पत—
सो बंधे किम अभीणा छंद मांही ?
दोयण कुण थारा दुर्गादास ?
दोयण मां भोमरा तूझ दोयण,
न हिंदुआं हेत हय पाडिया,
न मुगल बादशा बाढाळी झाली,
करम खेतरा मांझी आसोत—
थारी कीरत माणसां पंथ हाली ॥

यहाँ श्री केशरीसिंह बारहठ के 'चेतावणी रा चुंगटिया' की चर्चा करना भी अप्रासंगिक न होगा जिसके १३ दोहों में व्यंग्य के वे चुभते हुए तीर थे कि उनके आघात से तिलमिलाकर मेवाड़ के महाराणा फतहसिंह का स्वाभिमान जाग उठा और वे दिल्ली-दरबार में न जाकर बीच से ही लौट आये। उन चुटकियों की बानगी देखिए—

औरां नै आसान, हांका हरवल हालणो।
किम हालै कुलरांण, हरवल साहां हांकिया।
नरियद सह नजराण, झुक करसी सरसी जिका।
पसरेलौ किम पांण, पांण छतां थारो फता॥

यही चित्र श्री कन्हैयालाल सेठिया ने अपने 'पातळ और पीथळ' में नई भाषा और नई चेतना के साथ ओजस्वी वाणी में उतार दिया है—

पीथळ, के खिमता बादळ री, जो रोकै सूर उगाळी नै,
सिंघा-री हाथळ सह लेवै, बा कूख मिळी कद स्याली नै,
धरती रो पाणी पिवै, इसी चातक़री चूंच बणी कौनी,
कूकर-री जूणा जिवै, इसी हाथी री बात सुणी कौनी,
आं हाथां में तलवार थकां, कुण रांड कै, वै है रजपूती
म्यानां रै बदळै बैरयां रै, छात्यां में रैवेली सूती॥

ऊपर कहा जा चुका है कि वीर-परंपरा के ये चारण कवि राष्ट्र के स्वातंत्र्य-संग्राम के लिए युवकों को ललकारते पाये जाते हैं, पर इस बार शत्रु को मारने के लिए नहीं स्वयं अपने को मातृभूमि पर बलि देने के लिए। स्वतंत्रता के आंदोलन के साथ-साथ राष्ट्र के लिए एक भाषा का महत्व भी इन लोगों ने समझा। परिणामस्वरूप हिंदी का राष्ट्रीय स्वरूप विकसित करने में इन कवियों ने बहुत योग दिया। पर राष्ट्रीय जागरण की इस चेतना को जनता तक पहुँचाने के लिए राजस्थान की भिन्न-भिन्न बोलियों का प्रयोग करना भी कविगण नहीं भूले। राजस्थानी लोकगीतों ने राष्ट्रीयता की इस लहर को राजस्थान के गाँव-गाँव में पहुँचा दिया।

राष्ट्रीय आंदोलन और रूस की क्रांति के प्रभाव से राजस्थान भी न बच पाया। शोषित एवं पीड़ित वर्ग में नव-जागरण का उदय हुआ और वे संगठित होकर शोषक वर्ग से अपने अधिकारों की माँग करने लगे। इसका प्रभाव कविता पर भी पड़ना अनिवार्य था। राजस्थान के कवि भी स्वभावतः प्रगतिवाद की ओर झुके। क्रांति के गायक रेवतदान 'कल्पित' की 'इनकिलाबरी आँधी' की ललकार सुनिये:—

अंधकार मत जाण बावळा इनकिलाबरी छाया है,
इण भाग पड़ळिया लागरां रा, केई राजा रंक बणाया है।
रे आ या काळी रात जिका पूनम रो चाँद हँसावै है?
रे आ वा बाळा मौत जिका मुगती रो पंथ बतावै है।
रे आ वा मोळी हूनी जका के मरतां वेळा आवै है,
रे आ नागन काळी जहर जका दाढां में इमरत लावै है।
इण धुंआधार रै आंचल में इक जोत जगै है जगमगती,
अंधार घोर आंधी प्रचण्ड, आ धुंआधार धप धप करती।

आवै है उर में आग लियां
गढ़ कोटां बंगळां ने दहती॥

पर मेघदूत की भाँति विप्रलंभ-शृंगार का गीति-काव्य है। इनके अतिरिक्त सर्वश्री चंद्रसिंह राठौर, मनोहर प्रभाकर, इंदुवाला पुगे आदि और भी अनेक गीतिकार हैं। अधिकांश गीत या तो लोकगीतों की धुन पर लिखे गये हैं या सिनेमा के चलते गीतों की तर्ज पर।

इनके अतिरिक्त कुछ छंदोबद्ध कथाएँ भी इस युग में लिखी गई हैं जिनमें वीर और शृंगार का अच्छा समन्वय हुआ है। इस प्रकार की कविताओं में सबसे अच्छी ख्याति पाई श्री मेघराज मुकुल के 'सैनाणी' ने। बहुत दिनों तक इस कविता ने कवि-संमेलनों में श्रोताओं का मनोरंजन किया। हाडीराणी अपने मोहग्रस्त पति से कहती है—

बोली रजपूतण नाथ आज थे मती पधारो रण मांहीं।
तलवार बतावो मैं जास्यूं थे चूड़ी पैर रो घर मांहीं॥

रणोद्यत हो जाने पर भी चूँडावत को संदेह घेर लेता है और वह सैनाणी मांगता है। रानी सैनाणी भेजकर ही दम लेती है—

फिर कह्यो ठैर ले सैनाणी कह झपट खड़ग खींच्यो भारी।
सिर कट्यो हाथ में उछल पड्यो सेवक भाग्यो ले सैनाणी॥

इसी परंपरा की एक और कविता 'कोडमदे' है जिसमें रमणी के शौर्य और त्याग का अपूर्व मिश्रण है। ध्यान देने की बात यह है कि ये कविताएँ गेय हैं। श्री बजरंगलाल की 'किरण', श्री हणूतसिंह देवडा की 'बेटे रो बलिदान' और चंडीदान की 'विदा' ये भी सुन्दर छन्दोबद्ध कथाएँ हैं।

इस काल में मुक्तक रचना के लिए गीतों के अलावा दोहा और सोरठा छन्दों को पर्याप्त रूप से अपनाया गया है। इन मुक्तकों में जीवन के अनुभव का निचोड़ भी है, चमत्कारोक्तियाँ भी हैं और नये युग के अनुकूल नये भाव एवं नये उपमान भी हैं—

फारह तो कहतो फिरे, हर कीनै हकनाक।
जा री है झीनै कहूँ, हिये लिफाफो खाक॥

पोस्ट कार्ड को तो सब पढ़ सकते हैं। वह रहस्य को छिपा नहीं सकता। पर लिफाफा जिससे कहना होता है उसीसे सारी बात कहता है।

इस परंपरा में श्री मनोहर शर्मा की 'अरावली की आत्मा', श्री मोमराज के 'मूंघा मोती', श्री मांगीलाल चतुर्वेदी की 'मरुभारती', श्री उदयराज उज्ज्वल का 'धूड़सार' आदि सुन्दर मुक्तक-संग्रह हैं जिनमें समाज-सुधार, उद्बोधन आदि पर सुन्दर चमत्कारोक्तियां हैं। 'धूड़सार' में उज्ज्वलजी सामयिक चेतावनी देते हैं—

आप लियो नह एक उत्तम गुण अंगरेज रो।
औगण गह्या अनेक सिरदारों लीजो समझ॥

श्री मोमराज 'मंगळ' दुर्जन और कांटे की तुलना करते हुए कहते हैं—

कपड़ो देवै फाड, मंगळ कांटो वाड रो।
दुरजन करै बिगाड़, आघो रहजे मंगळा॥

श्री मांगीलाल चतुर्वेदी की नीति संबंधी सूक्ति भी देखिए—

नकटी नथ को के करै, गंजो क्यां में तेल।
पालै ? गंडक के करै, लेकर के नारेळ॥

कथा-प्रसंगों को लेकर इस युग की कुछ गेय कविताओं की रचना का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। पर प्रबंध-काव्य की ओर ध्यान कम ही गया है। श्रीमंतकुमार व्यास के 'रामदूत', श्री मनोहर शर्मा के 'अमरफळ', 'मरवण' और 'पंछी' किसी प्रकार इस अभाव की पूर्ति करते हुए देखे जाते हैं। छायावाद ने भी राजस्थानी कवि को विशेष प्रभावित नहीं किया। 'सांझ' में छायावाद की कुछ झलक देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त श्री गजपतिचंद्र भंडारी ने प्रतीकवादी प्रणाली का आश्रय लेकर 'मिनखपणे रो काल' में छायावाद के शरीर में प्रगतिवाद की आत्मा को भरने का प्रयत्न किया है।

आधुनिक राजस्थानी कविता में 'व्यंग्य' का एक विशिष्ट स्थान है। श्री अमरदान की कविता व्यंग्य-प्रधान है। उन्होंने अपनी व्यंग्य

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की ही नहीं, पाश्चात्य आर्यभाषाओं की भी पूर्वजा संस्कृत भाषा आज किसी की भी मातृभाषा नहीं रही और पाश्चात्य विद्वानों ने तो इसे 'मृतभाषा' तक घोषित किया है। इसलिये 'आधुनिक संस्कृत कविता की प्रवृत्तियाँ' विषय ही 'संस्कृत' के लिये कुछ असामयिक सा प्रतीत होता है। पर बात वास्तव में ऐसी नहीं है। 'संस्कृत' ने मातृभाषा के गौरवपूर्ण पद का त्याग अपनी कन्याओं के लिए न जाने कब का कर दिया था—आज से शतियों पहले ही। पर भारत ने इसे मृतभाषा कभी स्वीकार नहीं किया। मातृभाषा के पद का त्याग करने पर भी भारत में उसको सदा ही मातृभाषा से भी अधिक सम्मान मिलता आया है और सामान्य धारणा के विपरीत, आधुनिक युग में भी संस्कृत में बराबर काव्य-रचना हो रही है। डा. एम. कृष्णमाचार्य ने अपने 'हिस्ट्री ऑफ क्लैसिकल् लिटरेचर' में भारत के सभी प्रदेशों के ऐसे अनेक प्रसिद्ध अनतिप्रसिद्ध विद्वानों का उल्लेख किया है जो विगत और वर्तमान शतियों में संस्कृत-भारती के भण्डार को अपनी कृतियों से समृद्ध कर रहे हैं।

यहाँ दो बातें स्पष्ट कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा। पहली तो यह कि संस्कृत के आचार्यों की दृष्टि से केवल पद्य लिखने वाले ही कवि नहीं माने जाते प्रत्युत गद्य और दृश्य-काव्य लिखने वाले को भी कवि-संज्ञा दी जाती है। दूसरी बात यह है कि संस्कृत के विद्वान् प्रायः पुराणपन्थी होते हैं। अद्यावधि निर्मित साहित्य इतना सम्पन्न है कि बाह्यजगत् की हलचलों का और विदेशीय साहित्य-प्रवृत्तियों का प्रभाव संस्कृत साहित्य निर्माताओं के ऊपर नगण्य मात्रा में पड़ता है। उन की कृतियाँ शास्त्रीय परम्परा का ही अनुशीलन

और अनुकरण करती आ रही हैं। इसलिये इस युग के रहस्यवाद, छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि वादों का विवाद इनकी कविताओं में ढूँढना व्यर्थ होगा। इसलिये विशिष्ट प्रवृत्तियों के अभाव में इन पंक्तियों में वस्तुतः 'आधुनिक संस्कृत कविता' का ही परिचय देने का प्रयास किया जायगा, प्रवृत्तियों का नहीं।

इस युग के अधिकांश कवि प्राचीन परम्परा के अनुसार काव्य रचना करते हैं— चाहे वस्तु-विवेचन की दृष्टि से देखिये चाहे उस के रूप की दृष्टि से। विषय में कोई नवीनता नहीं। अधिकांश ने पुराणों का आधार लिया है और कुछ ने इतिहास-प्रसिद्ध कथानकों का—काव्य में भी और नाटकों में भी। शैली की दृष्टि से भी ये भारतीय काव्यशास्त्र के ही सिद्धान्तों की लीक पर चले हैं, अपनी किसी नवीन शैली के निर्माण की ओर इनकी रुचि विशेष नहीं रही है। पुराणों के आधार पर नितान्त मौलिक कृतियों की विवेचना के प्रसंग में यदि आधुनिक धारा के पिता कहलाने का श्रेय किन्हीं प्रकाण्ड विद्वान् को प्राप्त है तो वे हैं महामहोपाध्याय शीघ्रकवि शास्त्री श्री शंकरलाल माहेश्वर। शीघ्रकवि ने "श्री बालचरितम्" नामक महाकाव्य की रचना की है जिसका स्थान "नैषधीय-चरित" के बाद आधुनिकता की दृष्टि से सर्वप्रथम है। इसके अतिरिक्त "सावित्रीचरितम्," "ध्रुवाभ्युदयम्," "श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदयम्" आदि नाटक और कादम्बरीकल्पा अतीव मनोहारिणी कथा "चन्द्र-प्रभा-चरितम्" ये शीघ्र कवि की प्रमुख रचनाएँ हैं। कविकुलगुरु के "चन्द्रातपद्युतरजसा मलिनी भवन्ति" के भाव का विस्तार करनेवाले 'श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदयम्' नाटक के श्लोक-रत्न यहाँ उदाहरण स्वरूप दिये जाते हैं:—

> गगनाभरणानि दिव्यदिव्यान्यपि कोशा इन्दिरालकेशकोशाः।
> विलसन्ति गृहेषु चेतनः किं यदि दोषा नहि बालकेलिलोला॥

विजितेन्द्रसभा सभागृहे चेत् प्रबलानीह बलानि दुर्जयानि ।
सुहृदः सुहृदश्च चेत्ततः किं यदि दोला नहि बालकेलिलोला ॥ *

श्री मूलशंकर-माणिक्यलाल याज्ञिक (जन्म सं १९४३) के तीन नाटक "संयोगितास्वयम्वरम्," 'छत्रपतिसाम्राज्यम्" और "प्रताप-विजयम्" उपलब्ध हैं। कवि ने ऐतिहासिक कथावस्तु का आधार लेकर नवीन चेतना के संचार का सन्देश अत्यन्त ओजस्विनी शैली में दिया है। लालित्य और माधुर्य की दृष्टि से यदि इनकी कविता को देखें तो पद्मावती-चरण-चारण-चक्रवर्ती जयदेव के हरि-स्मरण-सरस विलास-कला-कुतूहल-युक्त गीतगोविन्द का स्मरण होता है—

विलसति ललिता उपवनवनिता । नवपल्लविता अनिलतरलिता ।
तरुवरमिलिता सुकुमारलता रसिकामहिते मृदुकेलिहिते ।
मनसिजदयिते सरससवसन्ते ॥ —संयोगिता स्वयंवर ।

पण्डित श्री अम्बिकादत्त व्यास जी (१८५८–१९००) का "शिवराज विजयः" छत्रपति शिवाजी महाराज के पुण्यप्रचुर जीवन को चित्रित करनेवाला एक रोचक गद्यकाव्यमय उपन्यास है जिसमें बाणभट्ट की शैली का अनुकरण दर्शनीय है। 'सुप्रभातम्' पत्र में इसका विज्ञापन इस प्रकार छपता था:—संस्कृतसंसारस्य चतुर्थं गद्यमहाकाव्यम्! शिवराजविजयः अभिनवबाणभट्ट-भारत-रत्न-महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यास-साहित्याचार्य-लेखनी-प्रसूतः ललितमधुरः सरस-सरलः संस्कृतोपन्यास-सन्दर्भः। ऐतिहासिकतथ्यसम्वलितं हिन्दूसंस्कृति-गौरवस्यान्तिमसु-दाहरणं क्लीवहृदयेष्वपि पुंस्त्वोपपादकमीदृशं कथावस्तु केषुचनाऽपि संस्कृत-काव्येषु नास्त्येव ॥

---

* यदि घर में झूले में झूलता हुआ क्रीडा करनेवाला शिशु न हो तो दिव्य वस्त्रा-लंकार और अलकेश (कुबेर) के कोश की भी विडम्बना करनेवाला कोश भी व्यर्थ ही है। यदि झूले में झूलता हुआ और बाल्लीला करता हुआ शिशु घर में नहीं तो इन्द्र-सभा से भी बढ़कर सभा पर आधिपत्य, अजेय प्रबल बल की प्राप्ति एवं अनन्य प्रीति-सम्पन्न मित्र मण्डली आदि सब कुछ व्यर्थ हैं।

श्री मेधाव्रतजी काव्यतीर्थ-कृत 'कुमुदिनी-चन्द्र' एक और मनो-मुग्धकारी गद्यकाव्य है। इसी तरह सुप्रसिद्ध 'साहित्यदर्पण' की सुललित 'कुसुम-प्रतिमा' टीका और 'नैषधीयचरितम्' की टीका के रचयिता वंगदेशनिवासी श्री हरिदासजी सिद्धान्तवागीश की अमूल्य कृति 'रुक्मिणीहरणम्' महाकाव्य है। सिद्धान्तवागीशजी की अन्य रचनायें 'वंगीयप्रतापम्' (प्रतापादित्य चरित्र विषयक), 'शिवाजी प्रतापम्' और 'जानकी विक्रमम्' नाटक आपके राष्ट्रप्रेम और स्वदेश-वात्सल्य के उदाहरण हैं।

पटना के महामहोपाध्याय पं. श्री रामावतारजी शर्मा (१८७८–१९२८) संस्कृत के प्रकाण्ड साहित्यकार थे। उनके कई काव्य और 'हर्ष-नैषधीय' नाटक प्रसिद्ध हैं। उनके 'भारतीय इतिवृत्तम्' अनुष्टुप् छन्द में भारत का लघु साहित्यिक इतिहास है। महामहोपाध्याय श्री परमेश्वरजी झा ने 'मेघदूत' की उपयुक्त परिणति के स्वरूप में 'यक्ष-मिलन' काव्य लिखा। जयपुर के भट्ट मथुरानाथजी शास्त्री (जन्म १८८०) का काव्य-संग्रह है "मञ्जु-कविता-निकुञ्ज"। पाश्चात्य रंग में रंगे वर्तमान सामाजिक जीवन पर उन्होंने चुटकियाँ ली हैं। भट्टजी ने हिन्दी, उर्दू और फारसी के अनुकरण पर संस्कृत में नवीन छन्द-योजना की है। घनाक्षरी कवित्त में पाणिनीय-व्याकरण-सूत्रों का प्रयोग द्रष्टव्य है :—

* प्रिय परदेशमुपयासि तर्हि का या मया
पाणिनीयपण्डिताय पद्धतिर्देया स्यात् ।
किन्तु विरहे ते हन्त गेहे कः प्रमोदो भवेत् !
'मदोऽनुपसर्गे' सूक्तिरेषा मननीया स्यात् ।

* प्रस्थानशील की उक्ति है :—'हे प्रिय ! आप परदेश-गमन के लिये प्रवृत्त हैं। इस समय आप सरल पाणिनीय-व्याकरण के पण्डित को किस प्रकार और क्या कहा जाए ! किन्तु आप के विरह में घर में आनन्द की कल्पना नहीं की जा-सकती। अतएव महाभाष्यकार का सूत्र 'मदोऽनुपसर्गे' (३।३।६७) का ध्यान

रखना

'मञ्जुनाथ' नातिवाहनीयो मधुकालोऽधुना
यात्रा दूरमध्वनापि चाल्पं कल्पनीया स्यात् ।

प्रायः पाणिनीयागमरीत्या मानवीया दशा
'कालाध्वनोरत्यन्तक संयोगे द्वितीया' स्यात् ॥

इस युग में 'अनुवाद' की ओर भी कई विद्वानों का ध्यान गया है। अनुवाद विदेशी भाषाओं से भी हुआ है, भारतीय भाषाओं से भी। विदेशी भाषाओं में से स्वभावतः अंग्रेजी के काव्यग्रंथों एवं नाटकों की ओर विशेष ध्यान गया है। 'शेक्सपीयर' के नाटकों में से शैल दीक्षितार ने 'भ्रांति-विलास' के नाम से 'कामेडी आफ एरर्स' का, राजराजवर्मा ने 'ओथेलो' का, आर. कृष्णमाचार्य ने 'वासन्तिक स्वप्न' के नाम से 'मिड-समर-नाइट्स ड्रीम' का अनुवाद किया है। काव्यों में एम. एम. ताडपत्रीकर ने 'विश्वमोहन' नाम से 'गेटे' के 'फाउस्ट' का, डा० शामशास्त्री ने 'लेसिंग' के 'एमेलिया गैल्ट' का, सी. वेंकटरमैया ने 'शोकान्तिका' के नाम से 'टेनीसन' के 'दी कप' का अनुवाद किया। आधुनिक भारतीय भाषाओं की भी कई प्रसिद्ध कृतियाँ संस्कृत के परिधान में सजाई गई हैं। श्री भगवान् दत्त शास्त्री 'राकेश' ने प्रांजल संस्कृत पद्य में 'कामायनी' का रूपान्तर कर प्रसाद की अमरकृति को और भी चमका दिया है। श्री परमानंदजी कृत 'बिहारी सतसई' का संस्कृतानुवाद सचमुच बड़ा ही सुंदर बन पड़ा है। गद्यकाव्यों में बंकिमचंद्र के 'लावण्यमयी' का अनुवाद श्री अप्पाशास्त्री

आना स्वाभाविक है। [सिद्धान्त-कौमुदी के उत्तर-कृदन्त प्रकरण के अनुसार उपसर्ग की अनुपस्थिति में मद का प्रयोग होता है: यथा धनमदः। उपसर्ग रहने से मद का माद होता है: यथा उन्माद।] भारती अनुपस्थिति में मद कैसे रहेगा ! अतएव वसन्त के इस रुचिर काल का अतिवाहन अनुचित है। ऐसे समय में दूर देश की यात्रा कष्टप्रद है। मनुष्य की दशा काल और मार्ग (देश) के अत्यन्त संयोग से कुछ और ही हो जाती है (कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे द्वितीया-अष्टाध्यायी २।३।५)।

ने किया है और 'कपालकुंडला' का अनुवाद श्री हरिचरण भट्टाचार्य ने। उक्त भट्टाचार्य ने तो शार्दूलविक्रीडितम् जैसे वीर रस के छंदों में उमर-खैयाम की शृंगाररसमयी रुबाइयों तक का अनुवाद कर दिया है।

आज एकांकी का जो विशिष्ट रूप पाया जाता है वह पश्चिमी एकांकी कला से प्रभावित है, इस सत्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। समकालीन सामाजिक महत्व के अनेक विषयों पर अनेक नाटक—विशेषतः एकांकी—लिखे गये हैं। श्री क्षमाराव का 'बाल-विधवा', श्रीमती क्षमाराव का 'कटु विपाक', श्री प्रभुदत्त शास्त्री का 'संस्कृत वाग्विजय' जैसे नाटक इसी श्रेणी के हैं। आधुनिक शैली के एकांकियों में श्री जीवजि भीमभट्ट का 'काश्मीरसंधान समुद्यम', राजपूत-मुस्लिम युग की ऐतिहासिक-रोमांटिक घटनाओं से प्रेरित श्री वी. के थंपी कृत 'प्रतिक्रिया', 'वन-ज्योत्स्ना', 'धर्मस्य त्वरिता गतिः', श्री वरदराज शर्मा का 'कल्याऽहम्' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'कौमुदी' में एक दुःखान्त नाटक 'महाश्मशान' भी प्रकाशित हुआ था।

देश के स्वतंत्रता-संग्राम का प्रभाव संस्कृत-साहित्य पर पड़ना अनिवार्य था। फलतः स्वतंत्रता-संग्राम के महारथी काव्य के नायक बनाए गये। श्री विजयराघवाचार्य के 'तिलक वैदग्ध्य', 'गांधी-माहात्म्य' और 'नेहरू-विजय' में क्रमशः लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और पंडित मोतीलाल नेहरू की प्रशस्तियाँ हैं। इस श्रेणी की रचनाओं में सब से प्रसिद्ध पण्डिता क्षमाराव की 'सत्याग्रह गीता' है जिसमें महात्मा गांधी द्वारा संचालित विभिन्न आन्दोलनों का काव्यबद्ध इतिहास है। इसका एक मधुर पद्यः—

जयतु जयतु गान्धिः शान्तिभाजां वरेण्यः
यमनियममुनिष्ठः प्रौढसत्याग्रहीन्द्रः ।
हिमकरिव पूर्णः मान्द्यलोकान्धकारम्
विशदसुनयपीयूषरश्मिजालैः निरस्यन् ॥[1]

---

१. शान्ति के स्थापकों में सर्वश्रेष्ठ, यम नियम में निष्णात एवं, प्रौढ़ सत्याग्रहियों के अधिनायक लोक मानी निविड़ अन्धकार को अपने विशद सुनय की पीयूषमयी किरणावली से निरस्त करनेवाले पूर्ण-चन्द्र के सदृश, महात्मा गान्धी की जय हो।

'आशुकवित्व' संस्कृत की अपनी प्रवृत्ति है जो धारानरेश महाराज भोजराज के समय तक तो पूर्णरूपेण भारत में व्यापक थी। सुभाग्यवश यह प्रवृत्ति इस युग में भी इतस्ततः दृष्टिगोचर होती है। फलस्वरूप इस युग ने संस्कृत को अनेक आशुकवि दिये हैं, जिन में शीघ्रकवि शंकरलालजी माहेश्वर, भारतमार्तण्ड आशुकवि गट्टूलालजी और महामहोपाध्याय पं. मथुरानाथजी दीक्षित की चर्चा की जा चुकी है। इस परम्परा में 'साहित्य-दर्पण' की 'विमला' हिन्दी टीका के रचयिता स्व. पण्डित शालग्राम जी शास्त्री का शुभनाम अविस्मरणीय रहेगा। सन् १९२३ में काशी में अखिल भारतवर्षीय संस्कृत सम्मेलन हुआ था। महामना पं. मदनमोहन मालवीय ने स्वागत-समिति के सभापति के पद से समस्त भारतीय संस्कृतज्ञों के सामने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित किया :—"अस्ति किं संस्कृत भाषाया-मीदृशी शाश्वती लोकोत्तरोपकारिता यया: अध्ययनाध्यापनार्थे सर्वे-रपि आर्यवंशीयैः सार्वजनीनशाश्वतप्रबन्धार्थे प्रयत्नः करणीयः ? यद्यस्ति तर्हि के च ते सर्वोत्कृष्टा उपायाः यैरिदमभीप्सितं प्राप्तुं शक्यते ?" इस प्रसंग में मालवीयजी ने यह भी एक प्रश्न विद्वानों के सामने रखा कि यदि हिंदी अनुवाद की सहायता से सभी शास्त्र पढ़ाये जाँय तो क्या हानि है ? पं. शालग्राम शास्त्री ने इस विचारणीय प्रश्न का श्लोकबद्ध उत्तर केवल दस मिनट के अल्प समय में देकर सभा को चकित कर दिया। विस्तारभय से उन १८ श्लोकों को यहाँ देना संभव नहीं।

किसी भी साहित्य में, यदि उसमें जीवन का सच्चा चित्र हो तो, हास्य व्यंग्य और परिहास-काव्य का भी एक बहुत बड़ा भाग होता ही है। इस युग के संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की रचनाएँ पर्याप्त मात्रा में पाई जाती हैं। संस्कृत के भावुक कवियों ने समाज-सुधार के नाम पर भारत के पश्चिमीकरण, वेशभूषा, भोजन, रहन सहन आदि में पश्चिम के अन्धानुकरण पर व्यंग्य करते हुए हास्य-रस की सृष्टि की है। आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली और पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त युवकों पर उपर्युक्त पं. शालग्राम शास्त्री की चुटकियाँ द्रष्टव्य हैं :—

चातुर्यं चाकरीमात्रे कौशलं बूटपालिशे ।
भाले लिखति चैतावत् शिक्षा पाश्चात्यचालिता ॥
"एम० ए०" परीक्षामुत्तीर्णः इतिहासे प्रतिष्ठितः ।
छात्रो वक्तुं न शक्नोति भीष्मः कस्य सुतोऽभवत् ॥
आङ्गलानान्तु को राजा कियद्वारं व्यमूत्रयत् ।
इति सर्वं विजानाति न जानाति स्वकं गृहम् ॥

आधुनिक पतलूनधारी जैन्टलमैन पर—ऊपर जिनका स्मरण किया गया है—म. म. पं. मथुरानाथजी दीक्षित महोदय के हास्य की भी एक बानगी देखिये:—

• गौराङ्गानुकारी 'मञ्जु' 'मिस्टर चर्पटामेन'
आखेटाय पक्षिणां स्थितोऽभूत्तरुसंहतौ ।
तावत्पैण्टलून विवरेण कृकलास कोऽपि
रिङ्गन् रिङ्गन् निभृतमयासीत् कटिपद्धतौ ।
अरेरे किमेतदिति वीक्षतेऽधो बलात्
तावत्कलामुण्डी प्राप्य पादावूर्ध्वमुत्थितौ ।
'घैंट' 'घैंट' जल्पन् पैण्टलूनपरतन्त्रपदो
जैंटिलमैन महाभागः पतितः क्षितौ ॥

वर्तमान शती में पश्चिम के प्रभाव से जो प्रहसन लिखे गये हैं उनमें एस. के. रामशास्त्री के 'शैलार्पर्वातिका' तथा 'मणिमञ्जूषा', एन. पी. शास्त्री के 'लीलाविलास', 'चामुण्डा' एवं 'निपुणिका'; वाई. महालिंग शास्त्री का "कौण्डिन्य प्रहसन' तथा 'शृंगारनारदीय'; सुरेन्द्र-

• गौरांग (अंग्रेज) का हूबहू अनुकरण करनेवाला एक भारतीय "मिस्टर चर्पटमेन" एकबार निरपराध पक्षियों का शिकार करने के लिये किसी पेड़ पर चढ़ा। उसकी पतलून के नीचे से एक गिरगिट रेंगता रेंगता कटि तक पहुँच गया और उसने काट लिया। पेड़ के ऊपर चिल्ल 'डैम्न ओरे, यह क्या है' कहते हुए ज्यों ही नीचे देखने लगा त्यों ही धड़ाम से गिर के वह पेड़ से नीचे गिर गया। गिरते समय पतलून के फटने से उस जैन्टलमैन के पतलूनधारी पैर ऊँचे हो गये और सिर नीचे।

मोहन का 'काञ्चनमाला'; जीव न्यायतीर्थ का 'पुरुषरमणीय' तथा 'क्षुत्क्षेम'; एस. एस. साते का 'माल भविष्यम्' प्रमुख हैं। प्रहसन के अतिरिक्त व्यंग्य नाटिकाएँ भी लिखी गई हैं। इस प्रकार का व्यंग्य सामाजिक, पौराणिक और चरित-विषयक नाटकों में भी दृष्टिगोचर होता है। किन्तु जो नाटक स्वतंत्र रूप से इस विषय को लेकर निर्मित किये गये उनमें के. के. आर. नायर का 'आलस्य कर्माग्रम्' (बेकारी), बटुकनाथ शर्मा का 'पाण्डित्यताण्डव', वाइ. महालिंग शास्त्री का 'मर्कटमर्दलिका भाण', सुदर्शन शर्मा का 'शृंगार शेखर भाण', श्री जगदीश्वर भट्टाचार्य विरचित 'हास्यार्णव प्रहसनम्', गोपीनाथ चक्रवर्ती-कृत "कौतुकसर्वस्व" और वासिष्ठगोत्रोत्पन्न विश्वेश्वरविरचित 'संकरविवाहं नाटकम्' आदि उल्लेखनीय हैं। 'हास्यार्णव प्रहसन' की प्रस्तावना के अन्त में सूत्रधार राजा अनयसिन्धु के राज्य-शासन-प्रबन्ध का वर्णन इस प्रकार करता है:—

[1]नीतिर्भीतिमती दिगन्तमभजत् क्षिप्रं समं साधुभि-
र्धूर्तानां पटुतापरं परधनाकृष्टं न केषां मनः ?

कान्ता कस्य बलान्न केन रमिता राज्ये यदीयेऽधुना
तस्य क्षौणिपतेः समागतिरिह स्थातुं न युक्तं प्रिये ॥ १० ॥

राजा के कुलपुरोहित महामहोपाध्याय विश्वभण्ड उपाध्याय के सुचरित का वर्णन कुट्टिनी बन्धुरा करती है :—

---

१. राजा अनयसिन्धु का पुरश्चर्या निमित्त आगमन से भयभीत होकर सूत्रधार नटी से कहता है:—हे प्रिये ! जिसके राज्य में नीति ने (सदाचार ने) भयभीत होकर साधु पुरुषों के साथ ही शीघ्र दूर देश का आश्रय ले लिया है, जिस के राज्य में किन किन धूर्तों के चातुर्यनिपुण चित्त परधनापहरण में आकृष्ट नहीं हैं, पुनः किसकी कान्ता (पत्नी) के साथ किस दूसरे ने बलात्कार नहीं किया ? ऐसे इस प्रदेश के नराधिप अनयसिन्धु के आने पर इस स्थल पर अधिक देरतक रहना उचित नहीं।

दिनोपवासी तु निशाऽऽमिषाशी
जटाधरः सन् कुलटाभिलाषी ।
अयं कषायाम्बरचारुदण्डः
शठाग्रणी सर्पति विश्वमण्डः ॥ १७ ॥

'शंकरविवाह' नाटक में नायिका मनोरमा की माता लेडी डॉक्टर भागीरथी ने प्रथम वृद्ध पति का त्याग कर के अपने से कम उम्रवाले कृष्णाजी पन्त से दूसरी बार विवाह किया था। इस के समर्थन में वकील गोडबोले कहते हैं :—

...त्वया जराजीर्णः संत्यक्तः स्वेच्छया पतिः
अन्यो नवश्च मद्भर्ता पुनरूढो गुणान्वितः ।
युक्तं कृतं भवत्येदं शुभं भूयात्तवानिशम् ।
पुराणपुरुषं त्यक्त्वा कृष्णं याति पद्मजा ॥
श्मशानवासिनं त्यक्त्वा गंगां संयाति सागरम् ॥
त्यक्तम्मयाऽपि वृद्धश्च सम्प्राप्तश्च पुनर्युवा ॥

इसके उत्तर में भागीरथी कहती है :—

दण्डिनं भारविं माघं कायस्थं शेक्सपीयरम् ।
कवीन्द्रं कालिदासं च भवानतिहि वर्तते ।
चाहस्वादममुं इलनेलादुग्धसितान्वितम् ।
आह्लादकारकं पातुं भवानर्हति सत्वरम् ॥
अर्थ्यते स्म पुरा स्त्रीभिः स्त्रीभ्यः पुत्रं च कुंकुमम् ।
दीयतेऽद्य तु सर्वेभ्यः चाहमानन्दकारकम् ।

कुछ लोगों का मत है कि "पैरोडी" (विडम्बन काव्य) पश्चिम की देन है; किन्तु संस्कृत-साहित्य में "पैरोडी" लिखने की परम्परा

२. राजा के कुलपुरोहित म. म. विधनाद, दिन में तो उपवास करते हैं, पुनः रात्रि में मांसमद्यादिक का भोजन करते हैं। उनके सिर पर जटा है तब भी वेश्यासक्तियुक्त हैं। यह गेरुआ वस्त्र पहिने सिर मुंडे और सुन्दर दण्ड हाथ में लिए हुए पुरोहितों के अपनी निराली धजा रखते हैं।

अति प्राचीन है। कवि श्री रमेशचन्द्र शास्त्री 'शालिहास' ने 'स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाम्' की 'पैरोडी' इस प्रकार की है:—

स्वान्तः सुखाय खलु "बीबि"-नुतिं तनोति
हास्यार्थमेव मुददां कवि शालिहासः ॥ [१]

इसी प्रकार "वागर्थाविवसंपृक्तौ" की "पैरोडी" इस प्रकार है:—

वणिगर्थाविवापृक्तौ हास्यस्य प्रतिपत्तये ।
युगस्य पितरौ वन्दे बाबू-बीवी-स्वरूपिणौ ॥ [२]

और एक पैरोडी सुनिये—

सुनील-नर्गिसौ वन्दे पतिपत्नीस्वरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति जनाः फिल्मस्थमीश्वरम् ॥

आधुनिक युग के युगदर्शन पर भी अनेक कवियों ने अपने भावोद्गार प्रकट किये हैं और

अयि जनाः पश्यन्तु सर्वे नवयुगे किं किं न जातम् ।

में एक कवि ने अन्न और दुग्ध के अभाव, धर्मनिरपेक्षता, वोट-भिक्षा, चरित्र का पतन करने वाले सिनेमा, होटल, नायलोनवस्त्र आदि पर व्यंग्य के सुन्दर छींटे कसे हैं ।

संक्षेप में संस्कृत कविता की ये ही आधुनिक प्रवृत्तियाँ कही जा सकती हैं ।

---

१. 'शालिहास' कवि अपने चित्त की प्रसन्नता के लिये तथा अन्य सब लोगों को हँसाने के लिये आनन्द देने वाली अपनी "बीबी" (धर्मपत्नी) की स्तुति करता है ।

२. व्यापारी और उसके धन की तरह अन्योन्य से अपृथक् ऐसे, इस युग के माता-पितारूप "बाबू और बीबी" (आधुनिक पति-पत्नी) की मैं हास्यरस की प्रतिपत्ति के लिये वन्दना करता हूँ ॥

आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ

(हिन्दी-पूर्वार्द्ध : छायावाद तक)

श्री ओमानन्द रु. सारस्वत, एम. ए.

पृष्ठ भूमि :

हिन्दी-साहित्य का विद्यार्थी सुदूर संधिकाल (छठी शताब्दी) की कविताओं से आरम्भ करके वीरता, भक्ति एवं रीति की कविताओं का अवलोकन करता हुआ, जब हिन्दी की आधुनिक कविता पर दृष्टि-पात करता है तो भाषा के परिवर्तन के साथ-साथ उसका अनेकानेक प्रवृत्तियों के परिवर्तन-प्रत्यावर्तन से भी परिचय होता है। उदाहरण के लिए छठी-सातवीं शताब्दी के एक दोहे को लिया जा सकता है और उसके साथ आज की नई कविता के स्वरूप का तुलनात्मक रूप देखा जा सकता है :—

(क) जहि मन पवन न संचरइ, रवि ससि नहिं पवेस।
तहि वट चित्त विसाम करु, सरेहे करिअ उवेस॥[1]

(ख) सच मानो प्रिय
इन आघातों से टूक-टूक कर रोने में कुछ शर्म नहीं
कितने कमरों में बन्द हिमालय रोते हैं,
मेजों से लगकर सो जाते कितने पठार,
कितने सूरज गल रहे अंधेरे में छिप कर,
हर आँसू कायरता की खीझ नहीं होता।[2]

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी काव्य प्राचीन काव्य से भिन्न है। संक्षेप में, हिन्दी की जो आदि कविता मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को महत्त्वपूर्ण मानकर चली थी वह विविध लहरियों के रूप में उतार-चढ़ाव खाती हुई आज निषेध की छायाएँ लेकर आस्था के स्वर को दबाने के लिए नया रूप धारण करके बढ़ रही है। कह नहीं सकते कहाँ रुकेगी ?

१. सिद्ध सरहपा: दोहाकोष।
२. विजयदेवनारायण साही : 'हिमालय के आँसू'।

'आधुनिक' का प्रश्न :

यह नवीन परिवर्तन अथवा स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति[१] आधुनिक काल की देन है। हिन्दी-कविता में आधुनिकता का समावेश कब से माना जावे—इस पर हिन्दी-विवेचकों में बड़ा मत-मतान्तर है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से आधुनिक काल माना है। कुछ विद्वान् महावीरप्रसाद द्विवेदी से, अथवा 'सरस्वती' के जन्म के साथ ही, इसका प्रारम्भ मानते हैं। कतिपय विद्वज्जन जयशंकर प्रसाद की प्रारम्भिक छायावादी कविताओं से ही आधुनिक हिन्दी-कविता का श्रीगणेश मानते हैं। ऐसे भी कुछेक आलोचक हैं जो मात्र प्रगतिवाद अथवा प्रयोगवाद को ही आधुनिक मानना पसन्द करते हैं। मेरे विचार से जहाँ तक आधुनिक कविता की भाषा या खड़ीबोली का प्रश्न है, हम उसका प्रारम्भ द्विवेदी-काल से ले सकते हैं; किन्तु जब हम हिन्दी की आधुनिक कविता की प्रवृत्तियों का विश्लेषण प्रस्तुत करना चाहते हैं तो हमें आधुनिक कविता का प्रारम्भ भारतेन्दु-युग से ही मानना पड़ेगा, क्योंकि रीति और शृंगार के बन्दीगृह में कलपती हुई कविता की मुक्ति का सर्वप्रथम उद्घोष भारतेन्दुकालीन कवियों ने ही किया। उन्होंने ही रीतियुक्त और रीतिमुक्त दोनों से परे अपनी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के सहारे आधुनिक हिन्दी-कविता को जन्म दिया। अपनी शैशवावस्था में यह कविता चाहे न पनप सकी हो किन्तु उस कविता में आगे चलकर 'छायावाद' आदि का स्वरूप धारण करनेवाली प्रवृत्तियों के बीज अवश्य निहित हैं। आधुनिक हिन्दी-कविता की प्रवृत्तियों के इन सौ वर्षों के काल को सुविधा की दृष्टि से दो भागों में विभक्त करके अध्ययन करना आवश्यक है—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। प्रस्तुत निबन्ध आधुनिक हिंदी कविता के पूर्वार्द्ध से संबद्ध है।

---

१. स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के अन्तर्गत हिन्दी-कविता की सभी आधुनिक प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता है, अतः यह शब्दावली यहाँ विस्तृत अर्थ में प्रयुक्त है।

'प्रवृत्तियों' के अध्ययन का आधार एवं क्रम :

आधुनिक हिन्दी कविता की प्रवृत्तियों का स्थूल रूप में दो प्रकार से विचार किया जा सकता है। एक तो वाह्य दृष्टिकोण से, जिसमें भाषा और शिल्प प्रमुख हैं; दूसरे काव्य की आंतरिक चेतना की दृष्टि से, जिसमें विषय और विचार मुख्य हैं। इन दोनों रूपों के अध्ययन करने का क्रम प्रस्तुत निबन्ध में ऐतिहासिक रक्खा गया है। सुविधा की दृष्टि से आधुनिक हिंदी-कविता के पूर्वार्द्ध की प्रवृत्तियों का अध्ययन निम्नलिखित तीन युगों में विभाजित है तथा इन युगों में भी खड़ीबोली हिंदी की ही कविता को लिया गया है:—

(क) भारतेन्दु युग।
(ख) द्विवेदी युग।
(ग) प्रसाद युग।

भारतेन्दु युग की प्रवृत्तियाँ :

आधुनिक कविता का प्रथम युग सन् १८६५ से १९०० तक चलता है। इसके पूर्व हिन्दी की कविता रीति-परम्पराओं में बँधी हुई थी, जहाँ राधाकृष्ण के स्मरण के मिस शृंगार का शृंगार किया जाता था। कविता को कवित्त और सवैयों के बन्धनों से मुक्त करने का प्रयत्न भारतेन्दु के उदय के साथ ही हमें देखने को मिलता है। जीवन से कविता का लगाव दूर हो गया था, वह इस युग में सामाजिक चेतना की प्रवृत्ति बन कर प्रस्तुत हुआ। कविता ने युग की प्रतिध्वनि को पहचाना और प्रथमबार हिन्दी के काव्य-कानन में यथार्थवादी पुष्प खिले, जो आगे चल कर 'प्रगतिवादी' रचनाओं को फलीभूत कर सके। 'कला केवल अनुकृति है'—अरस्तू की इस व्याख्या से ही संभवतः यथार्थवाद की उत्पत्ति हुई हो। इस यथार्थवादी दृष्टिकोण के कारण भाषा की सादगी कुछ बढ़ी और आलंकारिक बोझिलता कुछ घटी। स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, छूत-अछूत का प्रश्न आदि अनेक समस्यापूर्ण विचारों से आप्लावित कविता-धारा का साहित्य में अवतीर्ण

होना हमें बताता है कि युग की गतिशील चेतना ने साहित्य की प्रवृत्ति में पदार्पण किया। इस प्रवृत्ति को कविता में धारण करनेवाले कवि 'तत्कालीन आधुनिक' समाज की विचार-धाराओं से प्रभावित तो हुए, लेकिन वे परम्परागत सांस्कृतिक 'मर्यादावादी प्रवृत्ति' को स्पष्ट शब्दों में छोड़ नहीं पाये। अतः परम्परा की रक्षा भी इस युग में पाई जाती है।

पश्चिम के विचारों के झंझावात को रोकने का सचेष्ट प्रयास कविता की नवीनता का द्योतक तो था ही, राष्ट्रीयता की भावना का सर्जक भी था। देशभक्ति का स्वर इसी युग की देन है, और द्विवेदीयुगीन कवियों में इसका प्रसार व्यापक मात्रा में हुआ। भाषा की दृष्टि से इस युग की प्रवृत्ति व्रजप्रधान रही है, किन्तु खड़ीबोली का स्पर्श स्पष्ट देखा जा सकता है। स्वयं भारतेन्दु ने 'दशरथ विलाप' नामक कविता आधुनिक हिंदी में लिखी। श्रीधर पाठक का 'एकांतवासी योगी' भी खड़ीबोली में ही सामने आया।

द्विवेदी-युग की प्रवृत्तियाँ :

सन् १८६५ से १९०० ई. तक सर्जित-संचित विचारों का परिवर्द्धन-संशोधन उस दूसरे युग में हुआ जो 'सरस्वती' (१९०० ई.) पत्रिका के जन्म के साथ ही जन्मा। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी डा० जानसन की भांति हिन्दी भाषा के एक कठोर 'डिक्टेटर' बने। फलतः कविता की भाषा में परिवर्तन हुआ—व्रजभाषा के बदले खड़ीबोली कविता की भाषा बनी, और उसमें व्याकरण की शुद्धता पर बल दिया जाने लगा। द्विवेदीजी का सहारा पाकर खड़ीबोली खड़ी हो गई और उसका प्रथम महाकाव्य हरिऔध का 'प्रियप्रवास' प्रकाश में आया। इस काव्य में भाषा और छंदों पर संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। भावों में भी आधुनिकता का पूर्ण समावेश है। आकाश के दिव्य देवता कृष्ण अब समाज की सेवा करने धरती पर आ उतरे थे तथा शृंगार और रीति की आराध्या राधा भी अपना शृंगार छोड़कर लोकसेविका बन गई—

तेरे जैसी मृदु-पवन से सर्वदा शांति कामी।
कोई रोगी पथिक पथ में जो कहीं भी पड़ा हो॥
तो तू मेरे सकल दुख को भूल के धीर होके।
खोना सारा कलुष उसका शांत सर्वांग होना॥ —(प्रियप्रवास)

यहीं से अतुकान्त की प्रवृत्ति भी आरम्भ हुई। प्रसादयुग में निराला ने उसे प्रोत्साहन दिया और आधुनिक हिंदी कविता के उत्तरार्द्ध में प्रयोगवादी कवि प्रयोग की दिशा में उसे पता नहीं कहाँ से कहाँ ले उड़े।

शृंगारिक भावनाओं, कामुक क्रीड़ाओं तथा सस्ते रोमांस को इस युग में प्रोत्साहन नहीं मिला। नीति और सदाचार को आधार मानकर चलनेवाली कविता की प्रवृत्ति मुख्यतया मर्यादावादी और आदर्शवादी ही अधिक रही। द्विवेदीयुगीन कविताओं में सामाजिक आदर्शवाद की छाप है। यह कविता नैतिकता के धरातल को भुला नहीं सकी। काव्य में 'शिव' तत्त्व की अधिकता के कारण स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति इस युग में प्रारम्भ होकर भी युग के नीतिवाद का खुलकर विरोध नहीं कर सकी। यह विरोध कालान्तर में प्रगतिवादी तत्त्वों ने किया। दूसरे, इस युग के कवियों ने 'स्वामिनः सुखाय' की संकुचित प्रवृत्ति को त्याग कर मानवतावादी स्वर अपनाया। इस स्वर में व्यापकता के साथ-साथ उदारता भी है, सत्य के साथ-साथ न्याय का भी प्रबल समर्थन है और जागृति के साथ-साथ प्रेरणा के स्वर हैं, यथा :—

उद्देश्य कविता का प्रमुख शृंगार रस ही हो गया,
उन्मत्त होकर मन हमारा अब उसी में खो गया।
कवि-कर्म्म कामुकता बढ़ाना रह गया देखो जहाँ
वह वीररस भी रमर-समर में हो गया परिणत वहाँ!
—(भारत-भारती)

इस युग की कविता में राष्ट्रीयता का प्रबल समर्थन प्राप्त होता है। मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने

देशभक्ति की भावना को प्रबल स्वर प्रदान किया है। इस प्रवृत्ति के प्रसार के लिए सुप्रसिद्ध पुस्तक 'भारत भारती' का उल्लेख आवश्यक है।

स्वतंत्रता की सचेतना के कारण कविता में स्वच्छन्दतावाद को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। यह किसी अंश तक पश्चिम के रोमेण्टिक आंदोलन से प्रभावित प्रवृत्ति थी। श्रीधर पाठक का महत्त्व इस प्रवृत्ति की दृष्टि से विशेष है। उन्होंने प्रकृति का मानवीकरण किया, उसमें दैवी-संकेतों की अनुभूति दी, नये छंदों का प्रयोग किया, वस्तु और कथा, दोनों में ही नवीनता आई और प्रकृति उद्दीपन से आलम्बन रूप में प्रस्तुत हुई :—

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति॥
विमल-अम्बु-सर मुकुरन मह मुखबिम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन मन वारति॥
—(काश्मीर सुषमा)

इन पंक्तियों में अलंकार और नाद का सौंदर्य तो है, किन्तु यहाँ वस्तु-वर्णन निश्चितरूप से रीतियुगीन एवं भारतेन्दुयुगीन वस्तु-वर्णन से भिन्न है। पंचवटी, पथिक, यशोधरा, स्वप्न आदि प्रबन्ध-काव्यों में से अनेक अन्य उदाहरण दिये जा सकते हैं।

इस युग की प्रवृत्ति को 'इतिवृत्तात्मक' संज्ञा दी जाती है। किन्तु इस युग की कविता में इतिवृत्त से भिन्न स्वरों का भी अभाव नहीं है। प्रबन्धात्मकता की ओर विशेष आकर्षित रहने के कारण ही इस युग के मर्यादावाद को यह विशेषण दिया जाता रहा है। इस युग की पुनरुत्थानवादी कविता में भी परम्परागत एवं पूँजीवादी आदर्शों की अस्पष्ट छाप है। आचार्य द्विवेदी के सरस्वती-संपादन के भार से मुक्त होते ही हिन्दी कविता में छिपा बैठा एक नया 'वाद' अपनी 'छाया सहित प्रकट हुआ।

प्रसाद-युग की प्रवृत्तियाँ :

छायावाद इस युग की मुख्य प्रवृत्ति है। प्रसाद के शब्दों में यह मानस-पटल पर उदित-अस्त होती छाया है। वस्तुतः हिन्दी कविता का यह स्थूलता की अपेक्षा सूक्ष्मता की ओर एक मोड़ था। इस छायावादी प्रवृत्ति की शाखाओं के रूप में रहस्यवाद, प्रतीकवाद, करुणावाद हालावाद आदि अनेक नामरूपात्मक प्रवृत्तियाँ लगभग सन् १९२० से १९३६ तक के मध्य प्रारम्भ एवं संचरित होती रहीं।

द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता का स्वरूप परिवर्तित होकर इस युग में कवियों के आत्माभिव्यंजन और अन्तर्जगत् के चित्रण के रूप में प्रस्तुत हुआ :—

प्रिय ! मैं हूँ एक पहेली भी !
जितना मधु जितना मधुर हास
जितना मद तेरी चितवन में;
जितना क्रन्दन, जितना विषाद,
जितना विष जग के स्पदन में;
पी-पी में चिर दुख प्यास बनी
सुख-सरिता की रंगरेली भी !

—(महादेवी वर्मा)

यहाँ 'मैं' (जीवात्मा) और 'तुम' (परमात्मा) को प्रतीक मानकर आध्यात्मिक पक्ष का भी निरूपण किया जा सकता है। संभवतः इसीलिये छायावादी प्रवृत्ति के अन्तर्गत प्राचीन रहस्यवादी परम्परा का नवीन रूप माना जाता है। कबीर की शुष्कता और जायसी की आध्यात्मिकता को प्रेम के सांचे में ढालकर 'रहस्यवाद' का नया सिक्का चला। प्रसाद और महादेवी के साथ रामकुमार वर्मा इस प्रवृत्ति के प्रतिनिधियों में माने जाते हैं। अन्तरात्मा की रहस्यभावना किसी अज्ञात शक्ति से ऐसा गहरा नाता जोड़ना चाहती है कि जिससे वह और उसका प्रियतम कभी भिन्न न हों—'मैं तुम में हूँ एक, एक है

जैसे रश्मि प्रकाश'– (महादेवी वर्मा)। ऐसी ही उक्तियों को रहस्यवाद नाम दिया जाता है। निराला का एक रहस्यवादी चित्र प्रस्तुत है :—

तुम दिनकर के खर किरण जाल
मैं सरसिज की मुसकान,
तुम वर्षों के बीते वियोग
मैं हूँ पिछली पहचान। —निराला

रहस्यवाद की भारतीय परम्परा का निर्वाह महादेवी वर्मा के कुछ गीतों में पूर्णतः माना जा सकता है, यद्यपि मात्र प्रतीकपद्धति के कारण कुछ लोगों को रहस्यवादी संज्ञा देना उचित नहीं जान पड़ता। पंत में आध्यात्मिक सूक्ष्म रहस्यानुभूति के उदाहरण देखे जा सकते हैं।

इसी युग की कुछ रचनाओं में लौकिक प्रेम भी मिलता है। हाला, प्याला, मधुबाला, मधुशाला आदि के नाम पर 'हालावाद' का प्रचार हुआ। यद्यपि हाला, प्याला आदि की भी आध्यात्मिक व्याख्या की जा सकती है—और की भी गई—तथापि लौकिक प्रेम के संग में सर्वत्र अलौकिकता का स्वर ढूँढ़ निकालने की प्रवृत्ति सराहनीय नहीं कही जा सकती, क्योंकि पुरातन से चली आ रही पुनीत परम्परा—रहस्य प्रवृत्ति—की भी गहनता का इन कविताओं में सर्वथा अभाव है। हिन्दी में उमरखय्याम की खुमारी का खुमार कुछ दिनों में स्वत ही उतर गया। इस हालावाद का प्रतिनिधित्व करने वाले हरिवंशराय 'बच्चन' थे।

इस युग में प्रकृति-पर्यवेक्षण की प्रवृत्ति भी बड़ी प्रधान रही है। रीतिकाल की ऐन्द्रिकता ने कविता को प्रकृति से दूर कर डाला था। बाह्य प्रकृति का वर्णन तो तब मान्य था, किन्तु प्रकृति की आत्मा के चित्र नगण्य थे। आधुनिक युग के कवियों का दृष्टिकोण बदला और वे प्रकृति के छिपे आवरण को भेदकर उसकी आत्मा के दर्शन करने लगे। प्रकृति सजीव और संवेदनशील हो उठी :—

विजन-वन में तुमने सुकुमारि,
कहाँ पाया यह मेरा गान।
मुझे लौटा दो विहग कुमारि,
सजग मेरा सोने-सा गान। —पंत

छायावादी कवियों ने प्रकृति का आलम्बन के रूप में वर्णन किया। साथ ही इन कवियों ने प्रकृति को चेतन रूप में स्वीकार किया। इसीलिए आज प्रकृति के संश्लिष्ट, शांत, भयंकर आदि सभी रूप प्राप्त हैं। छाया, चाँदनी, बादल, जूही की कली आदि अनेक कविताएँ इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

इस युग की एक धारा 'करुणावाद' के रूप में भी आई। मनुष्य के जीवन में सुख-दुःख दोनों हैं और ध्यान से जाँच करें तो दुःख ही अधिक है। इस करुणा की धारा को मूर्त रूप देने का श्रेय प्रसाद को है:

इस करुणा कलित हृदय में
क्यों विकल रागिनी बजती;
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती। —प्रसाद (आँसू)

साथ ही—

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई।

यही भावना महादेवी में जाकर भव्य रूप प्राप्त कर सकी। महादेवी को 'करुणा की साकारता' कहा जा सकता है। उनकी कविताओं में वेदना और करुणा सजीव हो उठी हैं:—

मैं नीर भरी दुख की बदली!
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना, इतिहास यही
उमड़ी कल थी, मिट आज चली! —महादेवी

वस्तुतः छायावादी कविता में कल्पना, भावना और अभिव्यक्ति की प्रधानता है, इसीलिये छायावादी काव्य कलावादी हो गया है। इसकी कुछ प्रवृत्तियाँ शिल्पविधि में अन्तर्निहित हो गई हैं। संभवतः इसी युग के कारण आचार्य शुक्ल ने इस काव्य को शैलीगत प्रवृत्ति माना है, किन्तु निश्चित रूप से छायावाद में शिल्पविधान के साथ अन्य कुछ नवीनताएँ एवं मौलिकताएँ भी हैं। लाक्षणिक वक्रता, ध्वन्यात्मकता और अभिव्यक्ति में कल्पना का प्राचुर्य—ये छायावाद की अपनी विशिष्टताएँ रहीं। कल्पना के प्राचुर्य या आधिक्य के कारण कविता की छाया भी इतनी धुँधली बन जाती है कि भावों का पता ही नहीं चलता। कल्पना की सूक्ष्मता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है:—

घन गया तम सा था अलक-जाल।
सर्वाङ्ग ज्योतिर्मय था विशाल॥
अन्तर्निनाद ध्वनि से पूरित।
थी शून्य-भेदिनी-सत्ता चित॥
नटराज स्वयं थे नृत्य-निरत।
था अन्तरिक्ष प्रहसित मुखरित॥
स्वर लय होकर दे रहे ताल।
थे लुप्त हो रहे दिशा काल॥ —प्रसाद (कामायनी)

प्रसाद की 'आँसू', पंत की 'ग्रंथि' तथा 'अप्सरा' जैसी कविताओं में भी ऐसे अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। कल्पना के साथ-साथ सौन्दर्य के भी मंजुल चित्र छायावादी प्रवृत्ति में प्राप्त होते हैं। सौन्दर्य और प्रेम तो छायावादी कविता का प्रधान विषय कहा जा सकता है। सौन्दर्यानुभूति एवं अचेतन प्रकृति में सजीव का आरोप इस कविता की महान विशेषता मानी जा सकती है। 'सन्ध्या की सुंदरी' का एक सौन्दर्ययुक्त चित्र प्रस्तुत है:—

—दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी सी

धीरे, धीरे, धीरे,
तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर,
किन्तु जरा गम्भीर, नहीं है उनमें हास-विलास
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन काले घुँघराले बालों से
हृदय राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक। —निराला

इसी प्रकार प्रेम के अनेक चित्र प्रस्तुत किये जा सकते हैं। संयोग की अपेक्षा वियोग पक्ष का मार्मिक चित्रण छायावादी कवियों की प्रेमाभिव्यक्ति में अधिक सफल बन पड़ा है। प्रेम अधिकतर निराशाजन्य है। प्रेमजन्य निराशावाद का एक चित्र निम्नलिखित है:—

शैवलिनि, जाओ मिलो तुम सिन्धु से।
अनिल, आलिङ्गन करो तुम गगन को॥
चन्द्रिके, चूमो तरगों के अधर।
उडुगणो, गाओ पवन वीणा बजा॥
पर हृदय, सब भाँति तू कंगाल है।
देख रोता है चकोर इधर सिहर॥
वह मधुप बिंधकर तड़पता है, यहीं।
नियम है संसार का, रो हृदय रो॥ —पन्त (ग्रंथि)

'वियोगी होगा पहला कवि' गानेवाले कवियों की कविताएँ वियोग और निराशा से भरपूर हों तो आश्चर्य नहीं है; किन्तु इस निराशादि से थक कर कवि पलायनवादी प्रवृत्ति का भी आश्रय लेते मालूम पड़ते हैं। कुछ विद्वान् पलायनवादी प्रवृत्ति को स्वीकार नहीं करते, लेकिन संसार की भावभूमि को छोड़ कर कल्पित 'उस पार' की काल्पनिक बात करना, किसी अंश में पलायन का ही स्वर कहा जा सकता है।

भाषा-शैली की प्रवृत्ति की दृष्टि से इस युग की कविता को माधुर्यपूर्ण माना जाता है। वास्तव में, खड़ीबोली में कोमलकांत-पदावली,

वर्णचमत्कार, ध्वन्यात्मकता, नादयोजना, अनुरणन, अनुकरण, लक्षणात्मकता, संगीत, चित्रयोजना आदि विशेषताएँ इसी युग की देन हैं। इस युग में छन्दों के अनेक अभिनव प्रयोग किये गये। कवियों ने तुकान्त, अतुकान्त, नये विदेशी छन्द आदि ग्रहण किये। अलंकारों की दृष्टि से इस युग की यह प्रवृत्ति बड़ी व्यापकता लिये हुए है। विशेषरूप से अप्रस्तुत विधान में बड़ी विविधता एवं विशदता है। उदाहरणार्थ—रजनिश्रांता व्रज-वनिता-सी, सौन्दर्य-सरोवर की वह एक तरंग, कभी अनायक भूतों-सा, लाज का ज्यों मृदु किसलय जाल, बच्चों के तुतले भय-सी, आदि।

इन सब के साथ-साथ यह युग गीति के प्रचलन के लिए महत्त्वपूर्ण है। प्रसाद, पंत, महादेवी आदि अनेक गीतकारों ने एक ऐसी प्रवृत्ति को जन्म दिया जो छायावाद और प्रगतिवाद की संधिस्थली कहे जा सकते हैं, किन्तु विवेचक छायावाद के बाद प्रगतिवाद पर सीधे आकर विवेचन-विश्लेषण प्रारम्भ कर देते हैं और यह महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति प्रायः छूट जाती है। इस शृंखला में बच्चन, भगवतीचरण आदि कवियों का अपना योगदान रहा है।

प्रसादयुग में राष्ट्रगौरव-गान की प्रवृत्ति भी अपनी विशिष्टता रखती है। छायावादी कवियों के अतिरिक्त माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, दिनकर आदि ने वक्रशैली में राष्ट्रगौरव की कविताएँ लिखीं तथा द्विवेदीयुग की इतिवृत्तात्मकता को आधुनिकता का रूप देकर गुप्तजी, रामनरेश त्रिपाठी आदि ने भी राष्ट्रीय भावना को जीवित रक्खा। डा० नगेन्द्र ने इस प्रवृत्ति का नामकरण 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता' किया है। स्वयं प्रसाद ने देशप्रेम का उद्बोधन गीत लिखा :—

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती,
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ हो चलो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

इस प्रकार प्रसाद-युग की अनेक प्रवृत्तियों में से छायावादी प्रवृत्ति ही प्रधान रही है, जिस के आधार पर इस युग का नामकरण 'छायावाद-काल' भी किया जाता है। इस छायावादी प्रवृत्ति में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का समाज-विरोधी स्वर दबा हुआ लगता है। वास्तविक बात तो यह है कि यह प्रवृत्ति द्विवेदीयुगीन नैतिक आदर्शों एवं गांधीजी की राष्ट्रीयता के नैतिक आचारों का स्पष्ट विरोध नहीं कर सकी। दूसरे, इस प्रवृत्ति में सबसे बड़ी कमी यह थी कि इस प्रकार की कविताओं ने जन-जीवन की भूमि को बिलकुल ही छोड़ दिया।

१९३५ ई० के आसपास विचारों में तथा राजनीति में नये दृष्टि-कोण आते दिखाई देने लगे। कल्पना के चौमंजिले प्रासाद से कवि को धरती की कच्ची राही पर चलने की चेतावनी मिलने लगी। यथार्थ जगत् से अतिमानव (सुपरमैन) को हटाकर नरजाति की प्रतिष्ठा पर बल दिया जाने लगा। समाजवादी दृष्टिकोण बढ़ा और वक्रशैली एवं अन्तर्मुखी वृत्तिवाली छायावादी प्रवृत्ति लगभग १९३६ ई० में अंतिम साँसे लेने लगी।

आधुनिक हिन्दी कविता पुनः अंतर्मुखी से बहिर्मुखी होने लगी।

आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ

(हिन्दी–उत्तरार्द्ध : छायावादोत्तर)

श्री डा० रामेश्वरलाल खंडेलवाल, एम. ए., पी-एच. डी.

सन् १९१४ से १९३६ के आसपास तक हिन्दी-कविता का जो युग चलता है वह छायावाद-युग कहलाता है। इस युग की कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ थीं—देश के स्वर्णिम अतीत का गौरव-गान; कोमल, उदात्त और रमणीय मुक्त कल्पना; प्रकृति के मधुर और रहस्यमय रूप-व्यापारों के प्रति प्रबल आकर्षण; गंभीर प्रणयानुभूति और कल्पना के योग से व्यक्तिगत मनोराज्य का निर्माण, कोमल-कान्त-पदावलीयुक्त स्निग्ध, प्रवाहपूर्ण, चित्रमयी और संगीतात्मक भाषा, आदि। ये सब प्रवृत्तियाँ अपने विकास-क्रम में इस सीमा तक बढ़ गई थीं कि व्यावहारिक जीवन से कविता का विशेष प्रयोजन या सम्बन्ध नहीं के बराबर रह गया। प्राकृतिक और साहित्यिक क्रिया-प्रतिक्रिया के नियम के अनुसार इस परिस्थिति में एक युगान्तरकारी परिवर्तन उपस्थित हुआ और हिन्दी-कविता के क्षेत्र में 'प्रगतिवाद' नाम के एक नये वाद ने जन्म ग्रहण किया जिसकी मूल प्रेरणा चिन्तन जगत् का 'यथार्थ-वाद' है, जो उस जीवन-दृष्टि को सूचित करता है जिसमें कोरे, काल्पनिक या हवाई आदर्शों के स्थान पर यथार्थ वस्तु-स्थिति को ही प्रधानता प्राप्त हो। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि 'प्रगतिवाद' दर्शन-जगत् के यथार्थवाद का साहित्यिक संस्करण है।

प्रगतिवाद की कविता ने, इस प्रकार, यथार्थ जीवन, जगत्, देश और समाज तक ही अपनी गति-विधि को सीमित रखा। उसकी मूल प्रेरणा दार्शनिक-धार्मिक-नैतिक न होकर राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक थी। 'कला, कला के लिए' का नारा अब 'कला, समाज के लिए' में बदल गया था। जर्मनी के प्रसिद्ध क्रांतिकारी विचारक 'कार्ल मार्क्स' इस कविता के शाश्वत प्रेरणा-स्रोत या दीक्षा-गुरु थे। यथार्थ के आग्रह से और नवीन समाज रचना के ध्येय से समाज की अन्न-वस्त्र की स्थूल समस्या के निरूपण से लेकर काम-तृप्ति, प्रतिशोध और

रक्तपात की सूक्ष्म–स्थूल बलवती प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति तक इस कविता का कार्य क्षेत्र हो गया। आरम्भ में उसकी गति-विधि की भूमि यही थी। कालान्तर में उसमें विषय और शैली दोनों दृष्टियों से काव्यानुकूल परिवर्तन भी आया। काव्य के विषय मुख्यतः प्रस्तुत, व्यावहारिक, तात्कालिक, सामयिक एवं स्थूल भौतिक अस्तित्व-विषयक परिस्थितियों और समस्याओं से सम्बन्धित हुए। अतः काव्य-विषयों की नवीनता इस कविता की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है जो उस में विभिन्न रूपों में प्रकट हुई।*

विषय के अनुसार ही काव्य-शैली के स्वरूप का निर्धारण होता है। प्रगतिवाद की कविता की शैली में भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। भाषा में यह परिवर्तन सब से अधिक लक्षित हुआ। भाषा में सरलता, स्वाभाविकता और व्यावहारिकता आई। लोक जीवन से संपृक्त होने के कारण कविता में समाज में प्रचलित शब्दों–मुहावरों आदि का प्रचुर व्यवहार हुआ। तुकान्त सम-विषम छन्दों के अतिरिक्त अतुकान्त छन्दों का भी प्रचलन बढ़ा। छन्दों के चरणों की लम्बाई और प्रवाह, अभिव्यक्त भाव के वेग, गति और प्रवाह के अनुरूप हुआ। अलंकारों का कला-कुशल प्रयोग, जैसा भक्ति-काल, रीति-काल, या छायावाद-काल में था, बहुत कम दिखाई पड़ा, क्योंकि अभिव्यक्ति को अलंकारों के प्रयोग से कृत्रिम बनाना कवियों को प्रायः इष्ट न था

* समाजिक यथार्थवादी कविता के उत्साही व्याख्याताओं में से प्रो० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय के अनुसार इस प्रकार की कविता की मुख्य विशेषताएँ हैं—(१) बुर्जुआ राष्ट्रीय सरकार के विरुद्ध आक्रोश, (२) सामाजिक विषमता के विरुद्ध घृणा, (३) पीड़ित वर्ग के दुःखों के प्रति भावोद्गार, (४) समाज के शत्रुओं की पहचान, (५) सामयिक राजनीति, (६) [illegible], (७) मध्यवर्गीय चेतनोदय, (८) भावी वर्गहीन समाज की [illegible], (९) प्रकृति का [illegible], (१०) ग्रामीण जीवन का वर्णन, और (११) छायावाद का विरोध, आदि।

नहीं था। काव्य के कला-पक्ष के सम्बन्ध में सुधी विचारों के बीच एक प्रचलित धारणा थी कि कवियों का ध्यान यथार्थवादी या साम्यवादी विचार-धारा के प्रसार, प्रचार और पोषण—संवर्द्धन की ओर जितना है उसका दशांश भी कला-पक्ष की ओर नहीं। काव्य के वस्तु-पक्ष में वैचारिक स्फूर्ति ही अधिक थी। वह जीवन की अपेक्षाकृत गंभीर और मार्मिक अनुभूतियों के रूप में काव्योचित ढंग से रूपान्तरित न हो सकी। कुछ अपवाद तो सर्वत्र होते ही हैं।

प्रगतिवाद के इतने विवेचन से एक बात स्पष्ट होती दिखाई देगी। कविता प्रायः जिन सूक्ष्म-प्रबल भावों की प्रेरणा से होती है, जिन अन-कही, अन-गाई और अन-थाही भाव-लहरियों की टकराहटों से उत्पन्न होती है, उन गहरी और सजीव प्रेरणाओं और तीव्र मानसिक संवेदनाओं का सामान्यतः प्रगतिवाद की कविता में नितान्त अभाव था। अतः कवियों का एक वर्ग ऐसा उठ खड़ा हुआ जो काव्य को उसके स्थूल प्रयोजन या तात्कालिक उपयोगिता की दृष्टि से मुक्त करा कर उसे अधिक हार्दिक—आंतरिक, अधिक व्यक्तिनिष्ठ, अधिक प्रयोजनातीत, और शैली की दृष्टि से उसे अधिक संभ्रांत बनाने का पक्षपाती था। इन कवियों ने संगठित होकर एक ऐसी काव्य-धारा को प्रवाहित किया जो 'प्रयोगवाद' अथवा 'प्रयोगशील कविता' के नाम से अभिहित हुई। इतना होने पर भी ये प्रयोगशील कवि प्रगतिवादी कवियों से ठेठ नीचे जड़ों में बँधे रहकर एक ही मूल रस से सिंचित थे; दोनों का दृष्टिकोण जीवन के प्रति यथार्थवादी था। अन्तर केवल यह था कि प्रगतिवादी कवि सामाजिक धरातल पर रहकर यथार्थवादी थे, और प्रयोगशील कवि वैयक्तिक धरातल पर रहकर यथार्थवादी। स्पष्टता के लिए यों कहा जा सकता है कि यथार्थवादरूपी अंकुर के दो साहित्यिक नव-पल्लवों में से एक का नाम है प्रगतिवाद, और दूसरे का प्रयोगवाद—यद्यपि यथार्थवाद के अस्तित्ववाद (एक्जिस्टेंशियलिज्म), नग्नवाद (न्यूडिज्म), अतियथार्थवाद (सर-रीयलिज्म) जैसे और भी कई रूप पाये जाते हैं।

'प्रयोगवाद' यथार्थ के किस पक्ष पर अधिक जोर देता है? यह बाह्य जगत् को छोड़ कर मुख्यतः कवि के अन्तर्मन और उसके भीतरी मनोवैज्ञानिक द्वंद्व-विमर्शों और अन्य गतिविधियों पर ही अधिक बल देता है। इस वाद की कविता के मुख्य उपजीव्य या प्रेरणा-स्रोत संसार के सुप्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता डॉ. सिग्मंड फ्रायड हैं जिन्होंने मन के तीन स्तरों की—चेतन (कॉशस) उपचेतन या अर्द्धचेतन (सब कॉशस) और अचेतन (अनकॉशस) की कल्पना करके यह बताया है कि मन के सबसे ऊपरी स्तर पर, अर्थात् चेतन अवस्था में, जो कुछ भी होता है वह न्याय, नीति, धर्म, सदाचार, सामाजिक मर्यादा व नियम बन्धन आदि के ऊपरी दबाव से होता है। इस स्तर पर रह कर कवि जो कुछ प्रदान करता है उसमें उसका निजी कुछ नहीं, या बहुत कम होता है; काव्य में वस्तुतः हमारा अर्द्धचेतन या अचेतन मन ही अभिव्यक्त होता है, या होने के लिए छटपटाता है। किसी कवि का वास्तविक और सत्य-मौलिक सृजन मन के दो ही (अर्द्धचेतन-अचेतन) स्तरों से निःसृत अभिव्यक्ति से प्राप्त हो सकता है। फ्रायड की सामान्य धारणाओं या स्थापनाओं से प्रत्यक्ष-परोक्ष निर्णय निकाल कर हिन्दी के प्रयोगशील कवि उनकी सहायता से अपनी चिन्ता धारा विकसित करने और अपने काव्य का स्वरूप निर्माण करते जान पड़ते हैं।

विषय की दृष्टि से प्रयोगशील कविता का सारा भवन, तथ्य अथवा मान्यताओं की इसी आधार-भूमि पर खड़ा है। इस कविता में उपचेतन-अचेतन मन में जो कुछ खंडित-अखंडित, सुशृंखल-विशृंखल, संगत-असंगत, दमित-मर्दित व कुंठित-अतृप्त मानसिक स्थितियाँ, भाव अथवा विचार हैं उन सबको प्रकट करने का आग्रह है। अथवा उन सबको, यथार्थता या कलाकार की अन्तर्वृत्ति के विचार से, व्यक्त कर देना ही कलात्मक ईमानदारी जान पड़ता है।

पर इस कविता में विषय से अधिक महत्त्व काव्य-शैली, या अभिव्यक्ति-कौशल का है। तुकान्त अथवा अतुकान्त, छोटी-बड़ी पंक्तियों-

वाले छंदों में, नये-नये प्रतीकों तथा उपमानों की योजना द्वारा कल्पनाचित्रों की भाषा में, एकांत अंतर्जीवन की नई-नई संवेदनाओं को भाव की गति या क्रिया के बोधक विराम-चिह्नों की सहायता से, यथासम्भव भाव-सत्यता के साथ, समस्त वैचारिक पूर्वाग्रहों, परम्पराओं और अभिव्यक्ति की घिसी-पिटी पगडंडियों, रूपों और सांचों को निर्ममतापूर्वक बहिष्कृत कर, अपने अन्तर्मन को शाब्दिक रूप देना इस कविता का एकांत ध्येय समझा जाता है। अमेरिका इस प्रकार की कविता का अग्रणी है। व्हाल्ट ह्विट्मैन, टी. एस. ईलियट, ई. ई. कमिंग्ज आदि कवि इस कविता के मूल प्रवर्तक और पोषक समझे जाते हैं।

उक्त दो काव्य-धाराओं के अतिरिक्त एक तीसरी काव्य धारा (गीति-धारा या कल्पना-प्रधान रसात्मक मुक्तकों की धारा) का भी निर्देश किया जा सकता है जो अनुभूति प्रवण भक्ति-काव्य और छायावादी काव्य की आदर्शोन्मुखी भाव विभूति को सम्बल बनाकर चल रही है, किंतु जो प्रगतिवादी और प्रयोगवादी दोनों ही शिविरों में औपचारिक रूप से नामांकित नहीं है। यदि उसे वीरों के कठघरे में रखने का आग्रह किया ही जाय तो वह (स्वच्छ अर्थों में, साम्प्रदायिक में नहीं) प्रगतिवादी, समन्वयवादी, अथवा समन्वयात्मक प्रगतिवादी, जीवनवादी, स्वच्छंदतावादी आदि किसी संज्ञा से अभिहित की जा सकती है। इस धारा के कवि उक्त दोनों धाराओं के आत्यन्तिक वैचारिक आग्रहों दुराग्रहों से न्यूनाधिक रूप से प्रायः मुक्त हैं। वे आदर्शोन्मुख यथार्थवादी जीवन-दृष्टि से युक्त हैं, मनोरचना से छायावादी हैं, और प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के श्रेष्ठ तत्त्वों एवं उपकरणों से अपने काव्य को पुष्ट एवं सम्पन्न करने की दिशा में अग्रसर हैं। गीत रचना या मुक्तक-रचना की परम्परा में चल कर नवीन काव्य-उपकरणों से अपने काव्य को सम्पन्न व अलंकृत करने वाले कवि इस धारा के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं।

पृथक्-पृथक् काव्य-धाराओं और वाद-विशेष की चर्चा छोड़ कर यदि सामूहिक दृष्टि से वर्तमान अथवा सम-सामयिक कविता पर एक विहंगम दृष्टि डाली जाय तो हिन्दी-कविता की बहुमुखी प्रवृतियाँ और उनमें निहित गति-शील चेतना स्पष्ट ही आँखों के आगे उभर जायगी। इस कविता के अनुशीलन पर यह निर्भ्रांत रूप से प्रकट हो जाता है कि आज का जागरूक और स्वकार्य-कुशल हिन्दी कवि चिन्तन, मनन, जगत् जीवन-निरीक्षण, जीवनालोचन, भाव-प्रकाशन, शब्दगुम्फन और अन्तर्जीवन चित्रण—प्रायः सभी दृष्टियों से अपने कलात्मक दायित्व के प्रति पर्याप्त सचेत और निष्ठावान् है। मैं उन भिनभिनाते और चिपचिपाते असंख्य कवियों (!) की बात नहीं कर रहा हूँ जो विशेष-भ्रम से अट-सट कुछ न कुछ बकते हैं (यद्यपि ऐसे कवियों को भी कागज-स्याही की इफरात के इस प्रजातांत्रिक प्रेस-युग में अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के नाम पर फूलने-फलने का पूरा-पूरा अधिकार है)। मैं तो उन कवियों की बात करता हूँ जिनका मन सामयिक और शाश्वत—दोनों ही प्रकार की चेतना से प्रेरित स्फूर्त होकर जीवन, जगत् और मानव-मन की कोई गहरी, अनमोल अतः कहने लायक बात को वाणी की सौ-सौ भंगिमाओं में उतारने के लिए बरसाती लहरों की तरह पछाड़ें खाता है। हमारा विश्वास है कि नेकनीयत और निष्ठावान् कवियों की हमारे बीच आज कमी नहीं (अवश्य ही तुलसी, सूर, प्रसाद और पंत हर समय नहीं उगते)! आज की हिंदी-कविता का पाट कितना चौड़ा है! उसमें कितना तरंगाघात है! तरंगों में कितना फेन, कितना गर्जन और चाँद को छूने की विकल मचलन है! अवश्य ही इसमें बड़ा जीवन है! यह सब तप्त ताम्र सा तरल-फेनिल आत्म-द्रव, जो वाणी में ढलने को हहरता हुआ दौड़ रहा है, जो भी रचना उत्पन्न करेगा वह हमारी सांस्कृतिक निधि में किस कोटि की होगी, यह बात बहुते पानी में स्पष्टतापूर्वक देख पाना बहुत कठिन है। हाँ, इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि हमारा नवीन काव्य कृतित्व सर्वथा उपेक्षणीय तो कदापि नहीं। उसकी उपेक्षा जीवन की उपेक्षा है।

हमारे अनेक मेधावी कवि आज नवीन विश्व और जीवन के संक्रांतिकालीन विराट् प्रश्नों पर गंभीर चिन्तन कर रहे हैं। नवीन मानव के जन्म के पूर्व की धरती की प्रसव-पीड़ा अनेक कवियों की भौंहों में उलझी है। उदयशंकर भट्ट, 'दिनकर', 'नवीन', 'अज्ञेय', 'नीरज', गिरजाकुमार माथुर, धीरेन्द्रकुमार जैन, सिद्धनाथकुमार प्रभाकर माचवे तथा अन्य अनेक कवि मानव, विज्ञान, संस्कृति, विश्व-शांति, मानवैक्य सम्बन्धी गहरी चिन्ता में निरत हैं। पं. सुमित्रानन्दन पंत आध्यात्मिक चेतना और पार्थिव चेतना के परिणय के पौरोहित्य में निष्ठापूर्वक संलग्न हैं। मानव, उसका प्राकृतिक रूप, उसका अन्तर्बाह्य, उसकी जय-पराजय, उसका महान् भविष्य, उसकी शक्तियाँ, क्षमता, सम्भावनाएँ, काल-सिकता पर उसकी जय-यात्रा—मानव के सभी पक्ष, सभी रूप, सौ-सौ कंठों से, सौ सौ कठोर-कोमल स्वरों में आज निनादित—मुखरित हो रहे हैं। इस प्रकार हमारी नई विचार-निधि बढ़ रही है। नई आस्थाएँ और नये प्रजातांत्रिक जीवन-मूल्य प्रचारित किये जा रहे हैं जिनमें अनेक कवियों का योग-दान स्तुत्य है। राष्ट्रीयता से आगे बढ़ कर अन्तर्राष्ट्रीयता अथवा विश्व मानवता की ओर भी हमारे चरण बढ़ रहे हैं (यह हमारा शताब्दियों का उद्घोषित दायित्व है!)। मिट्टी की गंध आज के कवि को मादक लग रही है। स्वराज्य की प्राप्ति के पश्चात् अतीत का गौरव-गान कम हो गया है किन्तु वर्तमान और भविष्य दोनों उसकी दृष्टि में टँगे हैं। वर्तमान की समस्त विडम्बनाओं, विकृतियों, असंगतियों, कुत्साओं और विरोधाभासों को कवि आँख गड़ा कर देख रहा है। और आज हमारा जीवन कितना विपण्ण और कुरूप है। किन्तु मानव का सुनहला भविष्य भी उसके दृष्टि पथ में कनकाम्बरा उषा की तरह खिल रहा है। जीवन के सही स्वरूप की प्रतिष्ठा के लिए काव्य के माध्यम से जीवन की सजग आलोचना हो रही है जिसमें प्रगतिशील कवियों का योग-दान विशेष-रूप से उल्लेख्य है। सुमित्रानन्दन पंत, नरेन्द्र शर्मा, 'नवीन', शिवमंगल सिंह 'सुमन', भगवतीचरण वर्मा, 'नीरज', वीरेन्द्र मिश्र, बाल-

स्वरूप 'राही', रामानंद 'दोषी', देवराज 'दिनेश' आदि अनेक कवि जीवन के प्रति जागरूक हैं।

प्रेम मानव-हृदय की सनातन और सामान्य अनुभूति है जो विशेष रूप से प्रणय और भक्ति के धरातलों पर विविध भाव-भंगिमाओं और मुद्राओं में अवतरित होता है। शताधिक कवि आज प्रणय की अनमोल भावनाएँ सँवार कर प्रस्तुत कर रहे हैं। बच्चन, गिरजाकुमार माथुर, 'नीरज', शंभूनाथसिंह, शान्तिस्वरूप 'कुसुम', पद्मा 'सुधि' बाल-स्वरूप 'राही', भारतभूषण, रामदरश मिश्र, रवीन्द्र 'भ्रमर', आदि कवि प्रणय की निसर्ग–सुन्दर भावना के कतिपय प्रमुख गायक हैं। भक्ति और साधना के उदात्त धरातलों पर प्रणयाभिव्यक्ति करने वालों में 'निराला', पं. माखनलाल चतुर्वेदी, 'नवीन', अंचल', सुमित्राकुमारी सिन्हा, विद्यावती 'कोकिल', शंभुनाथ 'शेष' आदि कवियों का नाम उल्लेख्य है।

ऊपर विवेचित सभी काव्य-धाराओं में हृदय के आदि स्वर का माधुर्य और सौकुमार्य मोहक है। प्रेम के साथ ही सौंदर्य की भावना की अभिव्यक्ति और रूप-चित्रण की कला भी सूक्ष्म और गंभीर हो गई है। अनेक रचनाओं में वस्तु-व्यापारों का बाह्य रूपाकार वर्णन भावों की आन्तरिक आभा से सजल मृदुल हो उठा है। आज का निरीक्षण अनेक कविताओं में, बहुत बारीक, पैना और पारदर्शी है।

प्रकृति का चित्रण स्वतन्त्र और मानव-सापेक्ष दोनों ही रूपों में विपुलता से प्राप्त है। पंत, 'निराला', पं. माखनलाल चतुर्वेदी, 'अज्ञेय', 'अंचल', बच्चन, 'नीरज', गिरजाकुमार माथुर, जानकीवल्लभ शास्त्री गोपालसिंह नेपाली, वीरेन्द्रकुमार जैन तथा 'अज्ञेय' सम्पादित सप्तकों के अनेक कवि इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। विराट् प्रकृति के सभी रूपों, सभी आकारों और उसकी सभी चित्तवृत्तियों को पूर्णता के साथ चित्रित करने के लिए आज के कवि की तूलिका में बड़ी सघनता है! वर्षा और उसके विविध निसर्गों के प्रति भी आज के प्रकृति-प्रेमी कवि की आँख बहुत सजग व संवेदनशील है।

प्रकृति-जगत् की तरह ही मानव-जगत् भी कवि के सतत निरीक्षण और चिन्तन का विस्तृत क्षेत्र है। मानव-जगत् से हमारा आशय मुख्यतः उस जन-वर्ग से है जो विभिन्न प्रकार के शोषण, अन्याय और अत्याचार का शिकार है। आज के अनेक सदाशयी और सहानुभूतिशील कवि संत्रस्त, विपन्न, लुंठित और हताश मानव की अकथ व्यथा को वाणी दे रहे हैं। 'दिनकर', भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, सोहनलाल द्विवेदी, शिवमंगलसिंह सुमन, 'नीरज', बालस्वरूप राही, रामानन्द 'दोषी', देवराज 'दिनेश', चिरंजीत, 'कमलेश' प्रभृति कवियों ने व्यापक सामाजिक शोषण के विरुद्ध सात्त्विक आक्रोशमयी ऊँची आवाज उठा कर लांछित, पतित व विमर्दित के प्रति मानवीय प्यार की विमल स्रोतस्विनी बहाकर समाज के धन-पशुओं और प्रतिगामी शक्तियों को उनकी जड़ता के लिए ललकारा है। नवयुग की ताजी विचार-धारा इनके काव्य में हिल्लोल उठाती हुई प्रवाहित हुई है। साहस, आत्म-विश्वास, आशा और उमंग से भरे युवकोचित गीत भी आज गंभीर कंठ से गाये जा रहे हैं। 'कमलेश', शिवमंगलसिंह 'सुमन' आदि के कुछ गीत अत्यन्त मार्मिक बन पड़े हैं। उदात्त मानवीय भावनाओं का प्रसार भी आज की कविता का एक मुख्य गुण है। मैथिलीशरण गुप्त का समस्त काव्य-कृतित्व इससे ओतप्रोत है। अन्य कवियों में 'नीरज', बालस्वरूप 'राही', रामानन्द 'दोषी', कुमारी रमा सिंह आदि अनेक कवियों की रचनाएँ मानव हृदय के क्षितिज के प्रसार की प्रार्थिनी हैं।

पूर्व और पश्चिम, अतीत और नवीन की टक्कर में ध्वस्त हुए विश्व के नवनिर्माण की वेला में जीवन के वास्तविक स्वरूप के प्रकाश में जीवन की व्यापक आलोचना स्वाभाविक ही है। 'अज्ञेय', पंत, दिनकर, नरेन्द्र शर्मा, 'नीरज', उदयशंकर भट्ट, रामानंद 'दोषी', सोहनलाल द्विवेदी, मुकुटबिहारी 'सरोज', दिनकर, सोनवलकर आदि अनेक कवियों ने हमारे राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की संयत, शालीन और रचनात्मक आलोचना का स्तुत्य प्रयास किया है।

समसामयिक परिस्थितियों के प्रति भी आज का कवि पर्याप्त सजग है। काश्मीर, इंडोनेशिया, गोआ, चीन का अनधिकार भारत-प्रवेश, स्वेज का राष्ट्रीकरण आदि राष्ट्रीय अन्तराष्ट्रीय महत्व के विषयों पर भुवनेन्द्रसिंह बिष्ट, शिवमंगलसिंह 'सुमन', रामानन्द 'दोषी', देवराज 'दिनेश', 'नीरज' आदि कवियों ने करारी कविताएँ लिखी हैं।

आज हम विज्ञान के युग में श्वास ले रहे हैं। विज्ञान ने मानव-जीवन के समस्त स्नायु-जाल पर एकच्छत्र अधिकार कर लिया है। विज्ञान के इस सर्वांगीण, व्यापक और गंभीर प्रभाव से मानव का हृदय, मस्तिष्क और उस का समस्त जीवन व भविष्य प्रभावित हो रहा है। पंत, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, तथा अन्य अनेक कवियों के काव्य में विज्ञान-युग व यंत्र-युग की कवि-सुलभ जागरूकता विद्यमान है।

काव्य में सामाजिक साधना के अतिरिक्त व्यक्तिगत (व्यक्तिवादी नहीं) साधना का पावन स्वर भी सुनाई पड़ता है। किसी उपयुक्त शब्द के अभाव में हम इस साधना को परिष्कृत धार्मिक निष्ठा कह सकते हैं, जो अपनी साम्प्रदायिक तिक्तता–तीक्ष्णता से सर्वथा रहित है। पंत, उदयशंकर भट्ट, 'नवीन', सुमित्राकुमारी सिन्हा, विद्यावती 'कोकिल', 'नीरज', नरेश मेहता, ब्रह्मदत्त शर्मा आदि कवियों में वैयक्तिक साधना की पावन स्फूर्ति दर्शनीय है।

इधर कुछ वर्षों में काव्य में विविध कोटियों और स्तरों के हास्य-व्यंग, विनोद, वक्रोक्ति, कटाक्ष, आक्षेप आदि की विचारणीय वृद्धि हुई है। शुद्ध हास्य-व्यंग के क्षेत्र में 'बेढब', 'बेधड़क', कांतिस्वरूप 'चाचा', गोपालप्रसाद व्यास, कुंजबिहारी पाण्डेय, बरसानेलाल चतुर्वेदी, योगेन्द्रकुमार 'लल्ला', आदि कवि विशेष उल्लेख-नीय हैं। व्यंग वक्रोक्ति, कटाक्ष व आक्षेप के द्वारा किसी गंभीर उद्देश्य से (मुख्यतः क्षुद्र अहं, दंभ, मिथ्याचरण की प्रवृत्ति के प्रवृत्ति का मार्जन करने की दृष्टि से) किये गये मर्मान्तक प्रहार अपने प्रभाव

में प्रायः अचूक व अमोघ होते हैं। 'अज्ञेय', प्रभाकर माचवे, भवानी-प्रसाद मिश्र की अनेक कविताएँ इस दृष्टि से बहुत सफल हुई हैं। व्यंग-विनोद की प्रवृत्ति इधर उत्तरोत्तर बढ़ती चल रही है। कारण स्पष्ट है। विज्ञान-युग, अर्थ-युग और यंत्र-युग में जीवन की जटिल परिस्थितियों के कारण मानव की चेतना तरंगवती सरिता की तरह न रहकर प्रायः बर्फ सी जड़ीभूत हो जाती है। अहंकारमयी चेतना का यह कठोर हिम-पिण्ड ऋजु, सरल और मृदु कथन से न टूट कर तीखे, पैने, तिलमिलाने वाले शब्दों और वक्र उक्तियों से ही टूटता है। अर्थपरायण सभ्यता के इस निर्मम युग में राष्ट्रों और व्यक्तियों को हिलाने-झंझोड़ने के लिए इससे बढ़ कर इलाज निःशस्त्रीकरण की चर्चा के युग में और है ही क्या!

विचार-गत, भाव-गत और विषय-गत प्रवृत्तियों के इस परिगणन के पश्चात् काव्य-शैली-गत प्रवृत्तियों की चर्चा भी नितान्त आवश्यक है। यह चर्चा भाषा, छंद और अलंकार—इन तीन मुख्य उपशीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है। सबसे पहले भाषा को लें। आधुनिक कविता की भाषा अपेक्षाकृत सरल तथा व्यावहारिक हो चली है। तत्सम शब्दों की अपेक्षा उसमें तद्भव और देशज अथवा आंचलिक शब्दों का प्रयोग अधिकाधिक देखने में आ रहा है। उर्दू और अंग्रेजी के बहु-प्रचलित शब्दों का अनेक स्थानों पर निधड़क प्रयोग हो रहा है। मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग उर्दू कविता के सम्पर्क या प्रभाव के कारण अधिक बढ़ चला है। भाषा में अनुचित पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी अब उतार पर है, यद्यपि भाव और विचार के उत्कर्ष या औदात्य के क्षणों की अभिव्यक्ति में अब भी भाषा का अत्यन्त प्रौढ़ और परिनिष्ठित रूप देखने को मिलता है। शब्द-चयन, अनेक स्थलों पर अत्यन्त कौशलपूर्ण ढंग से हुआ है। शब्द-प्रयोग की व्याकरण-गत साधुता-असाधुता के विचार में पर्याप्त शैथिल्य दिखाई पड़ रहा है। एक ओर भाषा को जनस्तरीय बनाने के लिए जन-जिह्वा

लोकगीतों के अनुकरण पर अनेक कवियों ने हिन्दी कविता में छंद-सम्बन्धी सुंदर प्रयोग किये हैं। नेपाली, नरेन्द्र शर्मा, 'क्षेम', शंभूनाथसिंह, 'बचन', कमला चौधरी के कुछ सफल प्रयोग सामने आये हैं। 'बच्चन' जी ने तो इधर लोक-गीतों की धुन पर लिखने के अतिरिक्त और कुछ न लिखने की जैसे कसम सी खा ली है। उनके अनुकरण पर कुछ अन्य कवि भी लोक गीतों की धुन की धुन पकड़ते से दिखाई देने लगे हैं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और 'प्रेमघन' के युग में जो तत्संबंधी प्रवृत्ति आरम्भ हुई थी वह कालान्तर में लुप्त-सी हो गई। हर्ष की बात है कि कवियों का ध्यान पुनः इस ओर आकर्षित हुआ है।

अलंकार के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्त्व की प्रवृत्ति यह देखने में आई है कि उपमारूपकादि अलंकारों के विधान में उपमान पक्ष प्रकृति और जीवन के सामान्य रूप-व्यापारों से निर्मित होने लगा है। छायावाद-युग में जहाँ मुक्त, रंगीन और कोमल कल्पना अतीन्द्रिय जगत् या प्रेम-सौंदर्य-लोक की मुख-सामग्रियों को जुटाने में निमग्न रहती थी, वहाँ इस युग में कटे पंखों वाली कल्पना कंकड़ कीचड़ वाली पृथ्वी पर ही कँटीली झाड़ियों पर इधर-उधर फुदकती रहती है। कठोर यथार्थ के युग में यह स्वाभाविक ही है। दूसरी मुख्य प्रवृत्ति यह है कि कवि अब जागरूक होकर उपमारूपकादि अलंकारों के प्रौढ़ विधान में प्रवृत्त रहते नहीं दिखाई देते। 'वाणी मेरी चाहिये तुझे क्या अलंकार' (पंत)—यह उक्ति महँगाई और सादगी के युग में सब कवियों की चेतना में जज्ब-सी होती दिखाई दे रही है। फिर भी सौंदर्य-तृप्ति टूटे शीशे में ही देखकर भाल पर शृंगार की बिन्दी लगाये बिना नहीं रहती; काव्य में जान-अनजान में सुन्दर उपमा-रूपकों का समावेश हो ही जाता है:—

'तम का अगस्त्य पी गया ज्योति-सागर अथाह !'

कुशल कवियों की रचनाओं में कहीं कहीं तो अनेक नन्हे-नन्हे चमचमाते रूपक सहज ही गुँथे मिलते हैं।

था। उक्त प्रवृत्तियों में से कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, व्यापक या केन्द्रीय प्रवृत्तियाँ कुछ उद्धरणों द्वारा झलकाई जा सकती हैं—

यह जो कदम मेरे हैं,
पहले ही पहल गुजरे हैं तेरे सीने से।
ये कदम हैं एक बच्चे कलाकार के—
नन्हें-नन्हें पाँव,
जो डगमगाते चलते हैं।
आज चल रहे हैं,
कल रुक जायेंगे
मगर, तेरी इस धूल पर
एक छाप छोड़ जायेंगे।
ओ माँ धरती!
इन्हें लोरियाँ सुना,
जरूरत पड़े तो
इन्हें गुदगुदा के जगा,
और, सुन,
ये कदम अब तक के सभी कदमों से निराले हैं,
देखने में सीधे
मगर, बड़े घुँघराले हैं
और, सुन,
इन में जो कुछ अच्छाई है तेरी है
और, जितनी भी बुराई है, मेरी है। —ब्रजकिशोर नारायण

इन पंक्तियों में कवि ने पूर्ण भाव-सत्यता के साथ अपने कलाकार और धरती के बीच के वात्सल्यपूर्ण मधुर सम्बन्ध को मुखरित किया है। मास्तिक विश्वास के साथ कवि ने जो अपना महत्त्व आँका है, वह प्रभावशाली है।

जिसे माटी की
जिसे माटी की महक न भाये,
उसे नहीं जीने का हक है। —बच्चन

उक्त पंक्तियों में मिट्टी, पृथ्वी या भौतिक जीवन के सृष्टिगत महत्त्व को जिस सहजता से कवि ने दर्शाया है वह नवयुग की भावना के सर्वथा अनुरूप है।

निकले चाँद—न निकले सारी रात,
कल प्रभात को
कोई किरण ढूँढ ही लेगी द्वार। —बालकृष्ण राव

उक्त पंक्तियों में कवि का आशावाद का स्वर मुखरित हुआ है।

क्योंकि
कल भी हम खिलेंगे
हम चलेंगे
हम उगेंगे
और
वे सब साथ होंगे
आज जिनको रात ने भटका दिया है! —धर्मवीर भारती

इन पंक्तियों में भी, ऊपर की ही तरह, आशा और आत्म-विश्वास का स्वर मार्मिक है।

सृष्टिप्रिया पीड़ा है
कल्पवृक्ष—
दान समझ, शीश झुका
स्वीकारो—
ओ मन करपात्री! मधुकरि स्वीकारो!!
सहन करो, सहन करो,
ओ मन! वरण करो पीड़ा!! —नरेश मेहता

पीड़ा सहने का यह सात्त्विक स्वर अन्तर्जीवन की साधना का द्योतक है। आत्म-बोध का यह गंभीर स्वर सहज-सुंदर है!

मेरे मन के ऊपर बादल हैं
कोई आओ, मुझे बचाओ,
मेरे मन के भीतर बादल हैं
कोई आओ, मुझे बचाओ! —भवानीप्रसाद मिश्र

इस सरल और निश्छल अभिव्यक्ति में तामसिकता के अन्तर्बाह्य आक्रमण से मुक्ति पाने के लिए प्रकाश की याचना बड़े मार्मिक ढंग से व्यक्त हुई है।

चार धरो ओटे पर, चार अँगना में किंतु,
एक दीप चौराहे पर धरना न भूलना। —रामानन्द 'दोषी'

निजी स्वार्थ के संकुचित मण्डल को लाँघकर, लोक के अन्धकार-आक्रांत व दिग्भ्रांत चरणों का, ज्योति की किरणों से अभिनंदन करने का यह औदार्य-भाव वास्तव में वन्दनीय है!

इस सदन में मैं अकेला ही बचा हूँ,
मत बुझाओ,
जब मिलेगी रोशनी मुझसे मिलेगी।
एक अंगारा गरम मैं ही बचा हूँ,
मत बुझाओ,
जब जलेगी आरती मुझसे जलेगी। —रामावतार त्यागी

गहन शून्यता की भावना, निरन्तर आत्म-दाह की चाह, जगत् को ऊष्मा और आलोक प्रदान करने की मधुर अभिलाषा—सबकी समवेत अभिव्यक्ति कवि के साधनापूर्ण और ज्वलनशील अन्तर्जीवन को साकारकर रही है।

तम का अगस्त्य पी गया ज्योति सागर अथाह,
थम गया प्रेरणा का सहसा अन्तर्प्रवाह,
जो नजर अँधेरे में आधा सो बैठी है,
उसको पूरब का नया सवेरा देना है। —हंसकुमार तिवारी

कवि ने इन पंक्तियों में अपने महान् दायित्व और कर्तव्य-भावना को बड़ी गंभीरता से समझा है। कवि का महाप्राण व्यक्तित्व इन पंक्तियों में मूर्तिमान हो उठा है। 'तम का अगस्त्य', 'ज्योति-सागर' तथा 'पूरब का नया सवेरा' सब मिलकर अंकित भाव की चित्रपटी की विशालता बड़ी सफलता से हृदयंगम करा रहे हैं।

मेरे गीत, जागो!
खारे सिन्धु की खारी सतहों से
बादल की तरह उठो और छाओ,
पर्वतमालाओं से टकराओ,

बूँद-बूँद रिस आओ !
तुम्हारी उन बूँदों से
अंधी परतों में
दबे हुए बीजों-सी
अंधी आस्थाएँ अंकुरित हों
अकिंचन वृक्षों की—
सूखी डालों में—
कोंपल-सी प्रेरणाएँ जाग्रत हों;
बूँद बूँद बिखराओ !
मेरे गीत, जागो ! —कु॰ रमा सिंह

इन पंक्तियों में कवयित्री ने गीत और अपनी आत्मा के घनिष्ठतम सम्बन्ध को मुखरित किया है। गीत के रूप में लेखिका की आत्म-दान की भावना शतधा फूट पड़ी है। गीत की इससे बड़ी मुक्ति अकल्पनीय है। शैले ने भी अपनी 'ओड टु दी वैस्ट विंड' नामक कविता में ऐसी ही भावना को वाणी दी है।

मानव विरचित जनम-जनम के अमृत भरे सपनों से,
संचित करके उदात्तों के महान् तीर्थों से,
लाया गया यह के स्रुवापात्र का अर्घ्य-नीर हूँ।
मैं जीवन के हृदय में उठी कोई दिव्य पीर हूँ।
—विद्यावती 'कोकिल'

कवयित्री ने उपर्युक्त पंक्तियों में अपना अलौकिक आत्म परिचय दिया है ! अपने स्वरूप को पहचानने में लेखिका ने अन्तर्जीवन के कितने कटु-मधुर अनुभवों की दीर्घ शृंखला पार की होगी। साधना का यह स्तर निश्चय ही मर्मस्पर्शी है।

आओ !
हम बायों-मिगरेटों के कंधों पर बैठ
बातों के रेगिस्तान पार करें

होटल वाले का ही
किंचित् उद्धार करें
आओ तो—
बातें दो चार करें
क्योंकि आज सण्डे है
ओह ! आज सण्डे है ? —ओम प्रभाकर

स्वेद-सिक्त और कर्म-क्लांत आज के युग में 'लाइट मूड' की 'सीरियस' चीज भी अपना महत्त्व रखती है। जीवन जो है सो है। उसे घटा-बढ़ाकर देखा ही क्यों जाय। क्लर्की जीवन का इससे बढ़ कर सत्य क्या है कि व्यक्ति गम गलत करता रहे ! चाय–सिगरेट को ऊँट तथा बातों को रेगिस्तान बनाने में सुन्दर रूपक है !

सिगरेट का एक कश जिन्दगी,
चाय का एक घूँट जिन्दगी,
भूख-प्यास एक आह जिन्दगी। —सुरजीत 'नवदीप'

जीवन को जिसने जैसा देखा उसे वैसा ही लगा। जिन्दगी किसी के लिए कुछ है और किसी के लिए कुछ। सब के पास अपना 'लॉजिक' है। जीवन-मूल्यों के निर्धारण के इस युग में सब को स्वतन्त्रता है कि वे जीवन का मूल्य आँकें ! अतः जिन्दगी सिगरेट का कश, चाय का घूँट और भूख प्यास है तो यह भी किसी के लिए एक मूल्य है। यह अनुभवी कवि का अपना सत्य है। अंतिम सत्य क्या है, यह तो इस युग में लम्बे विवाद का विषय है !

उपर्युक्त उद्धरणों में सुधी पाठक आधुनिक हिन्दी-कविता की विचार-धारा, भाव-धारा एवं काव्य-शैली सम्बन्धी विविध प्रवृत्तियों की कुछ झलकियाँ पा सकेंगे, ऐसी आशा है।



आधुनिक कविता की प्रवृत्तियाँ

(उपसंहार)

श्री मोहनवल्लभ पंत

आधुनिक कविता का प्रारम्भ तब से समझना चाहिए जब से वह प्राचीन रूढियों और परंपराओं से मुक्त होने के लिये प्रयत्नशील होती है। प्राचीन कविता में कुछ रूढियाँ बन जाती हैं। कवि जब-तक इन रूढियों से चिपके रहते हैं तबतक कविता में नूतनता नहीं आ पाती। बीसवीं शती के प्रारम्भ में हिंदी का कवि विषय, भाषा और शैली सभी में रीतिकालीन परंपरा का ही पल्ला पकड़े हुए पाया जाता है। गद्य में आज की हिंदी (खड़ी बोली) को स्थान मिल गया था, पर कविता के लिये ब्रजभाषा ही मान्य समझी जाती थी। विषय *नायक-नायिका-भेद या रस-निरूपण होते थे और शैली में शब्द-*चमत्कार को प्रधानता दी जाती थी। यही दशा देश की लगभग सभी भाषाओं की रही। भारतीय भाषाओं पर पहला प्रभाव पड़ा अंग्रेजी के अध्ययन का। प्रथम महायुद्ध के समय विदेशों से संपर्क हुआ। जीवन के अनुभवों के क्षेत्र में परिवर्तन और विस्तार हुआ। फलतः उस युद्ध की समाप्ति के बाद ही एक ओर भारत स्वयं दासता के बन्धन से छुटकारा पाने के लिये छटपटाने लगा तो दूसरी ओर देश की सभी भाषाओं की कविता भी रूढि की शृंखला से उन्मुक्त होने के लिये तड़पने लगी। देशकाल की परिस्थितियों में परिवर्तन होने से कवि के अंतर्जगत् या भावना-क्षेत्र में परिवर्तन होना स्वाभाविक था। और नये भावों की अभिव्यक्ति के लिये तदनुरूप शैली का विकास भी उतना ही स्वाभाविक था।

देश की सभी भाषाओं में इस काल की कविता दो रूपों में दिखाई देती है। एक ओर भारत के अतीत-गौरव-गान के द्वारा राष्ट्र का उद्बोधन करते हुए देशभक्ति की भावना की अभिव्यक्ति के रूप में कविता सामने आती है; दूसरी ओर अंग्रेजी के अध्ययन के फलस्वरूप इस समय की कविता में विषय और रूप दोनों दृष्टियों से अंग्रेजी

का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। अंग्रेज़ी का प्रभाव बंगला में सबसे पहले दिखाई पड़ा। प्रारम्भ में इस नई कविता का बहुत विरोध हुआ। एक युग तक प्राचीन और नई कविताएँ साथ-साथ चलती रहीं। और एक ऐसा भी समय आता है जब नई कविता अपना एक स्थान निश्चित कर लेती है। दो महायुद्धों के बीच का यह युग हिंदी में 'छायावाद' युग के नाम से प्रसिद्ध है। भारत के साहित्याकाश में (साहित्यभूमि में नहीं) छायावाद का बीज बाहर से ही आया है। अंग्रेज़ी का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से, और बंगला के द्वारा परोक्ष रूप से भी, इसमें अवश्य पड़ा है। 'गीतांजलि' के प्रभाव से भारत की किसी भी भाषा की कविता नहीं बचने पाई। छायावादी कवियों के प्रकृतिवादी और मानवतावादी दृष्टिकोण से उनमें वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स और ब्लेक जैसे कवियों का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। विकास की प्रौढ़ावस्था में भारतीय दर्शन, उपनिषद्, विवेकानंद, अरविंद आदि का प्रभाव भी 'पंत' ने स्वीकार किया है। प्रकृति के प्रति नया दृष्टिकोण, सौंदर्यप्रेम और शृंगारिकता—ये छायावाद की वस्तुगत विशेषताएँ हैं तो कोमलकांतपदावली, भाषा में लोच और लाक्षणिकता, संगीतात्मकता, नये छंद एवं नये अलंकार इसकी शैलीगत विशेषताएँ हैं। कुल मिलाकर छायावाद ने हिंदी कविता को नई वस्तु दी, नई अभिव्यक्ति दी पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी जैसे श्रेष्ठ कवि दिये और पल्लव, ग्रंथि, गुंजन, आँसू, लहर, परिमल, तुलसीदास, नीहार, दीपशिखा जैसी प्रतिनिधि रचनाएँ दीं। 'कामायनी' तो छायावादी काव्य के विकास की चरम परिणति है। किंतु छायावाद जन्म से ही लोक भूमि से बचकर चलता रहा—भूमि पर पैर न रखकर अनंत में दौड़ लगाना उसने श्रेयस्कर समझा। फलतः इस भूमि पर उसके पैर अधिक न टिक सके और वह सरस्वती के मंदिर में अपनी अमूल्य भेंट अर्पित कर अनंत में विलीन हो गया।

प्राचीन और नवीन का संघर्ष सनातन है। नवीन में बल होता है तो वह प्राचीन को अपदस्थ कर देता है। पर बदलते युग के साथ

यह नवीन प्राचीन हो जाता है और एक नवीनतर रूप आधुनिक कविता के रूप में प्रकट होता है। इस आधुनिक कविता की एक परिभाषा किसी प्रकार निश्चित करने की स्थिति में होते ही कविता पुनः एक नवीन शृंगार कर सामने आ जाती है। इस आधी शती के आधुनिक काल में कविता नें 'छायावाद' से 'नई कविता' तक कितने ही रूप बदल दिये। ज्ञान-विज्ञान के विकास और उद्योगीकरण ने समाज में और समाज की विचार-धारा में परिवर्तन कर दिया। द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भ होते-होते 'मार्क्स' के समाजवाद और 'फ्रायड' के मनोविश्लेषण के अध्ययन ने कवियों को एक नई वैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की और समाज की आर्थिक व्याख्या के रूप में वर्ग-संघर्ष एवं रोटी का प्रश्न तथा मानव-मन के वैज्ञानिक विश्लेषण के रूप में यौन-भावना (सैक्स) कविता के चेतना-स्रोत बन गये। इस प्रकार यहाँ से कविता की दो धाराएँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं—प्रगतिवाद और प्रयोगवाद।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित युग लगभग सभी भाषाओं की कविता में 'प्रगतिवादी' युग के नाम से अभिहित है। वर्ग-संघर्ष को प्रधानता देने के कारण इस 'वाद' के कवियों के प्रिय विषय किसान, मजदूर और शोषित वर्ग बने। सुमित्रानंदन पंत की 'ग्राम्या' और 'युगवाणी' इस प्रकार की रचनाओं के संग्रह हैं। प्रगतिवादी युग में *कविता आदर्श के उदात्त क्षेत्र से यथार्थ की निम्न भूमि पर* उतर आई और एक ओर समाज के यथार्थ—नग्न यथार्थ—के चित्रण को ही प्रगति समझा जाने लगा, दूसरी ओर यथार्थ की ओट में काव्य में इतिवृत्तात्मकता का प्रवेश हो गया और प्रगति के नाम पर राजनीतिक विचारधारा का प्रचार किया जाने लगा। भावना या अनुभूति *के अभाव में यथार्थ के चित्रण से कविता में ज्यों-ज्यों बौद्धिकता* का प्रवेश होने लगा त्यों-त्यों वह हृदय से दूर हटती गई। सची प्रगतिशील कविता जीवन के संपर्क से ही उत्पन्न होती है और जीवन से ही शक्ति प्राप्त करती है। जीवन के साथ चलने वाली कविता किसी भी युग में प्रगतिशील कही जा सकती है। अपने युग का

सत्य चित्र उपस्थित करने वाले तुलसी क्या प्रगतिशील नहीं कहे जा सकते ? यदि रोटी का राग मात्र अलापना कविता है तो 'तुलसी' की ये पंक्तियाँ क्यों न प्रगतिवादी मान ली जाँय :—

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान, सोचबस
कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाई, का करी'।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु,
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी॥ —'कवितावली'

इस रचना में अपने देश की मिट्टी की ही गंध है, अपने ही देश के जीवन का चित्र है—विचार धारा या शब्दावली कहीं से उधार लाई हुई नहीं। प्रगतिशीलता की मुहर न होने पर भी इसे सच्ची प्रगतिवादी कविता कहा जा सकता है। जिन कवियों ने राजनीति के दलदल से दूर रहने का प्रयत्न किया है उनकी कविता में प्रगति का वास्तविक रूप देखने को मिल सकता है।

लोकभूमि से ऊपर ही रहने के कारण जब छायावाद जीवन से हट गया तो उसकी प्रतिक्रिया दो रूपों में प्रतिफलित हुई। जिन कवियों ने 'मार्क्स' की विचार धारा से प्रभावित हो साम्यवाद के प्रचार को अपना राजनीतिक लक्ष्य मान लिया वे 'प्रगतिवादी' कहलाये, पर जिन लोगों ने काव्य की वस्तु और उसके रूप दोनों में नये-नये प्रयोग करते रहना ही कविता का मुख्य लक्षण और ध्येय मान लिया उन्हें 'प्रयोगवादी' कहा जाने लगा। ये प्रयोगवादी वस्तुतः 'फ्रायडवादी' हैं जो यह मानकर चलते हैं कि "मानव मन की असंख्य कुंठाएँ ही काव्य में अभिव्यक्ति पाती हैं।" मानव का अचेतन मन मानव के समस्त क्रिया व्यापार को गतिमान करता है। मन की इस कुंठा, शंका या हिंसा को वह प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करता है। कविता में मनोविश्लेषण की इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के प्रवेश में किसी को

आपत्ति नहीं हो सकती। किंतु 'अति सर्वत्र वार्जित' है। जब कवि मानव-मन की परीक्षा के उन्माद में अंतर्मुखी बनकर बाह्य जगत् से विमुख हो जाता है और मनोविश्लेषण या कुंठा के नाम पर 'यौन' भावना उन पर हावी हो जाती है तब वह कविता के लिये घातक हो जाती है। इसके फलस्वरूप आज नैतिक मान्यताओं में आमूल परिवर्तन हो गया है। अब व्यक्ति समाज का अंग नहीं, वह स्वतंत्र हो गया है। व्यक्ति के इस अहंभाव की अभिव्यक्ति कविता में बराबर मिलती है। आज के प्रयोगवादी के अनुसार रंभा-सी रमणी, सावित्री-सी साध्वी, वाणी-सी विदुषी नारियों का अथवा सुनहली संध्या, रम्य राका, नव प्रभात, उन्मादक वसन्त का वर्णन बहुत हो चुका। अब तो इन घिसेपिटे विषयों को छोड़ कर नये-नये विषयों को ले कर कविता रचनी चाहिए। क्यों न गंदी नाली में सड़ते हुए उस गधे पर कविता की जाय जिसे चील गिद्ध नोच रहे हों, चारों ओर से दुर्गंध आ रही हो। माना कि 'सुंदर' की परिभाषा देशकाल के अनुसार भिन्न हो सकती है। कहीं शुक-नासिका और बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें सुंदर मानी जाती हैं तो कहीं चपटी नाक और पतली या कंजी आँखें भी सुंदर मानी जा सकती हैं। फिर भी सुन्दर और असुन्दर में एक स्पष्ट रेखा खींची जा सकती है। सुन्दर सुन्दर ही है और असुंदर असुंदर ही। और आकर्षण सुंदर के प्रति ही होता है असुंदर के प्रति नहीं। इसलिये नवीनता मात्र के लिये असुंदर को कविता का विषय बनाने में कोई तुक नहीं। यों बीभत्स रस की निष्पत्ति के लिये तो असुंदर का भी चित्रण कविजन करते आये हैं।

मन की कुंठाओं को अभिव्यक्त करने के लिये कवि प्रतीकों का सहारा लेते हैं। छायावादी भी कुंठाओं की अभिव्यक्ति के लिये प्रतीकों का सहारा लेता था और उसके ये प्रतीक प्रकृति से लिये जाते थे। पर प्रयोगवादी की अनुभूति वैयक्तिक होने से सर्वसाधारण से मेल नहीं खाती। इसलिये वह अपनी अनुभूति के अनेक स्वरूपों को अभिव्यक्त करने के लिये बुद्धि का सहारा लेने लगा है। प्रयोगवादी

यह स्वीकार करने को तैयार नहीं कि कविता अनुभूति या भावों की अभिव्यक्ति है। इसीलिये यह प्रेम, दया, करुणा आदि का भी बौद्धिक विश्लेषण करता है। फलतः कविता भावनाप्रधान से विचार-प्रधान होती जा रही है।

कवि प्रत्येक युग में प्रगतिशील होता है। वह काव्य के नये-नये विषयों का प्रयोग तो करता ही है, साथ ही नये-नये रूपों—शैलियों—का भी प्रयोग करता है। सादृश्यमूलक उपमा अलंकार प्रारंभ में शैली के नये प्रयोग के रूप में ही आया होगा। पीछे ज्यों-ज्यों शैली के नये-नये प्रयोग हुए त्यों त्यों नये-नये अलंकारों की वृद्धि हुई। छंद के रूप में वाल्मीकि का अनुष्टुप् छंद एक नया प्रयोग था, फिर तो न जाने कितने नये-नये छंद आये। इन प्रयोग करनेवालों को प्रयोगवादी किसीने नहीं कहा। पर आज वस्तु, भाषा, छंद आदि सभी में पुरानी रीतियाँ तोड़ कर सर्वथा विलक्षणता या नवीनता लाने में ही प्रयोगशीलता की इतिश्री समझी जाने लगी है। इसलिये 'प्रयोगवाद' शब्द एक विशेष प्रकार की कविता के लिये रूढ़-सा हो गया है। इस कविता पर अंग्रेजी कविता का प्रभाव पड़ा है—विशेषतः टी. एस. इलियट, डी. एच. लॉरेंस और पौंड्स का। अज्ञेय इस प्रयोगवाद के प्रवर्तक हैं और इसका प्रवर्तन सन् १९४३ में प्रकाशित सात प्रयोगशील कवियों के कविता-संग्रह 'तार-सप्तक' से माना जा सकता है। अज्ञेय के शब्दों में "वे राहों अन्वेषी हैं। काव्य के प्रति एक अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है...... वे किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं, राहों के अन्वेषी।" इनके प्रयोगों में एकरूपता नहीं—हो भी नहीं सकती। 'अन्वेषी' जो हैं। नई-नई राहों की खोज ही उनका लक्ष्य है—इसीलिये सफलता भी नहीं मिल पा रही है। 'दूसरे सप्तक' तक पहुँचते पहुँचते 'प्रयोगवाद' नाम भुला-सा दिया गया है। आज की कविता १९५० के पूर्व की कविता से सर्वथा भिन्न है। किसी प्रवृत्ति या लक्षण विशेष के अभाव के कारण इसका कोई निश्चित नाम भी नहीं रखा जा सकता।

एक नवीनता, एक विलक्षणता, प्रत्येक कविता में है। इसलिये यह कहा जाने लगा है कि इस दशक में प्रयोगवाद का ही 'नई कविता' के रूप में सहज विकास हो रहा है। प्रयोगवादी प्रयोग कर रहे हैं और नये कवि सृजन की नई नई राहों का अन्वेषण कर रहे हैं। अब तो 'नई कविता' नाम प्रायः स्वीकृत हो चुका है।

विषय-वस्तु की दृष्टि से देखा जाय तो नई-कविता वाले स्वयं यह नहीं जानते कि वे क्या लिख रहे हैं। अज्ञेय के शब्दों में 'रूढ़ि की साधना साहित्यकार के लिये वांछनीय नहीं।' इसलिये परंपरागत विषयों को तो ये छू भी नहीं सकते। कविता में जो सहजानुभूति होती है उसका तो इन में सर्वथा अभाव है। पंत के शब्दों में "भावपक्ष को वह वैयक्तिक निधि मानता है, उसकी सार्वजनिकता, उदारता एवं गांभीर्य की ओर वह आकृष्ट नहीं। भावों एवं मान्यताओं की दृष्टि से नई कविता अभी अपरिपक्व, अनुभवहीन तथा अमूर्त है।" कविता के विषय बदलते रहे हैं। नायक-नायिका-भेद छोड़कर देशभक्ति और राष्ट्रीयता कविता के विषय बने। कृष्ण और राधा के रूप में परिवर्तन हुआ। प्रकृति उद्दीपन से आलंबन के रूप में स्वीकार की गई। प्रयोगवादियों ने भी रोटी, किसान, मजदूर आदि को कविता के विषय के रूप में स्वीकार किया। राजा के स्थान पर रंक को प्रधानता मिली। फिर भी यहाँ तक गनीमत थी। विषय कुछ तो थे ही। पर नई-कविता का पहले तो कोई विषय ही नहीं होता, यदि कुछ अनर्गल विषय होता भी है तो कविता से उसका कुछ सम्बन्ध नहीं हो सकता।

विभा-वय

सांध्य-तन-लीन
हृदय
पाता है अंत समय
दीन, शान्त
विभा-वय।

वहाँ 'विमा-वय' शीर्षक का क्या अभिप्राय है और कविता से इसका क्या सम्बन्ध है यह कवि ही जाने !

सनातन—कथा

मान
× ×
मौन
× ×
मृत्यु

अब दिमागी कसरत कर इन प्रतीकों का कुछ भी अर्थ लगा लीजिये। वस्तुतः लोक-परिचित विषयों को ही काव्य का विषय बनाने में सुविधा होती है—उन्हीं का साधारणीकरण हो सकता है। पर ये नये कवि अनुभूति जैसी किसी वस्तु के अभाव में तर्क के सहारे अपने को दूसरे के गले उतारना चाहते हैं। ऐसे कवियों का एक दल होता है और उसके सदस्य परस्पर एक-दूसरे की कविता की व्याख्या करते हैं और वह भी अस्पष्ट—स्पष्ट है तो केवल 'परस्परं प्रशंसंति' ही।

नया कवि कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भाव व्यक्त करना चाहता है। उसके लिये वह प्रतीकों का सहारा लेने का ढोंग करता है। आकाश, कमल, चंद्र, हंस, समुद्र आदि अब इनके प्रतीक नहीं होते। गधा, ऊँट, छिपकली, कीचड़, मेंढक, कैक्टस आदि विलक्षण प्रतीकों के द्वारा वह अपने पाठक को चमत्कृत करने की चेष्टा करता है। इन सर्वथा नये—कभी कभी विदेशी—प्रतीकों के कारण आज की कविता एक पहेली-सी बनती जा रही है। कविता अब हृदय की वस्तु न रहकर मस्तिष्क की वस्तु होती जा रही है—भावना पर बुद्धि हावी होती जा रही है और यह कविता के लिये घातक है।

अभिव्यक्ति के लिए भाषा के नये-नये प्रयोग सदा से होते आये हैं। ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ीबोली आई। छायावादी कवियों ने इस खड़ीबोली को मांज मांज कर चमका दिया। कविता के उपयुक्त कोमल-

कान्त-पदावली और छंद के उपयुक्त लोच खड़ीबोली को इन्हीं की देन है। प्रगतिवादी कवियों ने बूर्जुआ, सर्वहारा वर्ग जैसे नये शब्दों के साथ भाषा में उर्दू और अंग्रेजी शब्दों का समावेश किया। पर आज का कवि पंक्तियों का अर्थपूर्ण होना आवश्यक नहीं मानता। 'रात चाँद सितारे, तुम मेरे प्यारे' जैसे असंबद्ध प्रयोगों को भी इन लोगों की समझ में कविता कहना असंगत न होगा। नई कविता उर्दू-अंग्रेजी शब्दों के धुँआधार प्रयोग तक ही सीमित नहीं—उसमें न जाने कहाँ कहाँ से, न जाने किस शास्त्र या विज्ञान से ढूँढ-ढूँढ कर लाए हुए शब्दों का सर्वथा अनर्गल प्रयोग होता है। व्याकरण की चिन्ता तो भले भले नहीं करते, फिर वे ही क्यों करें। पुराने कवि शब्द का अर्थ-संपृक्त होना आवश्यक समझते थे; पर नया कवि अर्थ की प्रतिपत्ति के लिये शब्दों का प्रयोग नहीं करता—ऐसा आवश्यक भी नहीं समझता। कहने को तो वह अपने को स्पष्ट करने के लिये नाना प्रकार के विराम चिह्नों और गणितीय चिह्नों का भी प्रयोग करता है—पर वस्तुतः ऐसा वह अपने पाठक को अपनी कविता के विचित्र रूप से चकित करने के लिए करता है। एक कविता यहाँ उद्धृत की जाती है। इसके शीर्षक, इसमें उर्दू-अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग, तुकबंदी—ये सब 'नई कविता' का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं:—

'प्रेम की ट्रेजेडी'

——> △ <——

(हाय !)

<—— △ ——>

(नहीं चैन,

जागते ही कट गयी रैन.......)

——> <——

(प्रेम यानी इश्क यानी लव.!)

'!'

'!!'

.∇ + △

....

. ?

(अरमानों के गाल पर चाँटा

झरबेरी का काँटा)

<————?————>

(मुहब्बत में घाटा !!)

यदि यही कविता है तो बीजगणित के समीकरण भी क्यों न कविता मान लिये जाँय। वस्तुतः भारत की सभी भाषाओं में आज कविता दृश्य काव्य होती जा रही है और जितनी अधिक सहायता 'प्रेस-कम्पोजिटर' से मिल सकती है उतनी ही वह नई कविता बन जाती है। काव्यत्व या पाठ्यत्व की अब इतनी आवश्यकता नहीं रह गई है। मैं कह चुका हूँ कि इन नये कवियों का एक अलग वर्ग बन गया है। वे इन विराम-चिह्नों को प्रतीक मान कर इनकी कुछ न कुछ व्याख्या कर ही देते हैं। पर एक तो उनमें से प्रत्येक की व्याख्या अलग अलग होती है, दूसरे एक व्यक्ति की व्याख्या में भी देश-काल के अनुसार अंतर हो जाता है, तीसरे यह औरों को समझाने की चीज ही नहीं। ध्यान देने की बात है कि जहाँ कविता एक ओर जनजीवन से हट गई है वहाँ दूसरी ओर लोकगीतों की धोरों पर जनजीवन के संपर्क का नाट्य भी किया जा रहा है। भाषा के प्रयोगों में आंचलिकता के नाम पर लोकभाषा के शब्द भी प्रायः सभी भाषाओं में प्रवेश पा रहे हैं—चाहे वहाँ उनका कोई अर्थ हो या न हो। और आज यह कहा जा सकता है कि कवि कुछ भी लिपिबद्ध कर ले उसे भाषा मान लिया जाय।

यही बात छंदों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। आधुनिक काल के प्रारम्भ में परंपरागत कवित्त, सवैये आदि को छोड़ कर संस्कृत के वर्णवृत्त स्वीकार किये गये। ज्यों-ज्यों लोकभाषाएँ संस्कारित होती गईं त्यों त्यों भारत की सभी भाषाएँ वर्णवृत्तों को अप-

नाती गई। और संस्कृतनिष्ठ कविता लिखने वालों को तो अभी तक सर्वत्र वर्णवृत्त प्रिय हैं। प्रयोगशील कवियों ने अंग्रेजी के 'सोनेट' और उर्दू के अनेक छंदों के प्रयोग अवश्य किये; किंतु आज नई कविता में इन विदेशी छंदों का जितने धड़ल्ले से प्रयोग होने लगा है उतना पहले कभी नहीं हुआ—सभी भाषाओं में। हैं ये सब पुराने ही छंद; पर नये कवि इनका प्रयोग नये के नाम से करते हैं। किसी भी कवि-सभा में ये कवि बड़ी शान से सोनेट, गजल, रुबाई या शेर सुनाने की घोषणा कर, पराई नकल में ही नवीनता समझ कर इतराते हैं। कुछ भी हो इन छंदों में एक लय तो है। रवीन्द्र के अनुकरण पर निराला छायावाद काल में ही मुक्त छंद का प्रयोग कर चुके थे। इस मुक्त-छंद में भी एक लय होती थी और भाव के अनुसार पंक्तियाँ छोटी-बड़ी होती थीं। पर आज तो लय या गति के अभाव में भिन्न भिन्न नाप-तौल की बेडौल पंक्तियाँ बिखेर कर कवि बनने का स्वाँग किया जा रहा है। यदि यही हाल रहा तो संभव है कविता गद्य की ओर बढ़ते बढ़ते नीरस हो जायगी और लोग एक दिन यह भी भूल जायेंगे कि कविता गाने या गुनगुनाने की चीज है। आज के ये कवि इलियट के इस सूत्र को ब्रह्मवाक्य मान कर चलते हैं, "कविता गद्य को अस्तव्यस्त करके उद्भूत होती है।" और सचमुच नई कविता से तो प्राचीन लेखकों के गद्य में अधिक प्रवाह, अधिक सरसता होती थी।

यों कहने को तो 'तुक' का विरोध किया जाता है—क्योंकि उसमें बन्धन जो है। तुक नाद-सौंदर्य में वृद्धि करता है। संस्कृत के वर्णवृत्तों में तो यों ही नाद-सौंदर्य होता है। इसलिए वहाँ तुक का कोई बंधन नहीं। अंग्रेजी के 'ब्लैंक-वर्स' के अनुकरण पर बंगला के कवि माइकेल मधुसूदन दत्त ने बीसवीं शती के प्रारंभ में ही अतुकान्त छंदों का प्रयोग किया था। देखा-देखी हिंदी में भी प्रसाद और निराला ने अतुकान्त छंदों का प्रयोग किया। क्रमशः अन्य भाषाओं में भी इसके प्रयोग हुए। इन छंदों में एक लय होती थी,

इसलिए तुक का अभाव अखरता नहीं था। पर जब आगे चलकर मुक्तछंद के प्रवेश से छंद का बन्धन ही अस्वीकार कर दिया गया तब व्यवस्थित तुक का स्थान ही कहाँ रह गया था। कहने को तो तुक का विरोध हुआ, पर तुक का मोह छोड़ा नहीं जा सका। तुक आया, पर मनमाने ढंग पर—

घास
काल अश्व का ग्रास
अंकुरती, करती विकास
चरचर जाता काल का घोड़ा बदहवास
\+ + +
प्रक्रिया
शुक्रिया

बेतुके तुक का यह एक उदाहरण मात्र है, अर्थ समझाना मेरा काम नहीं।

मिस्टर मेहरा
चेहरा लाल
सीने के बाल
साफ दीखते।
सर पर स्वेद,
मुँह में वेद
पुराण उराण, रेंगते,
पर मोस्ट ऑफ ऑल
गीता!

फिर तो पीता, रीता, मीता, पपीता के साथ [illegible] पंक्ति में 'हे गीता! गीता! गीता! गीता!' की तुक मिला कर [illegible] खिलवाड़ कर दिया है। आगे चल कर '[illegible] बोला' की तुक पर 'मिला ओला', 'सिर पर ओला', 'हाय री ओला', '[illegible] बोला', 'माया, मोला, होला' में तुक का [illegible] है।

यहाँ भाषा के प्रयोगों—पुराण, उराण, रेस्पते, मोस्ट ऑफ ऑल, और बंगला उचारण में 'आमी चोला' आदि—पर मौन रहना ही श्रेयस्कर है।

शैली की दृष्टि से प्रबंधकाव्य की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। प्रबन्ध का 'बंध' नये कवि को स्वीकार नहीं। विषय, भाषा, छंद आदि के बन्धन से मुक्ति की कामना करने वाला जो भी लिखता है वह 'मुक्तक' कहलाता है, और 'अन्यैः मुक्तम् इति मुक्तकम्' यहाँ अपनी समझता से सही अर्थ में आया है। वाक्य में एक शब्द का दूसरे शब्द से या अपने अर्थ से भी कोई संबंध नहीं, डंके की चोट कहा जा रहा है कि गीत लिखे जा रहे हैं। उसका भी एक नमूना लीजिये—

गीत

कौन मुझ को—
बिना जाने दे गया है
फूल मेंहदी के?

गंध जैसे—
नींद बनकर छा गई है

झरोखों पुस्तकों में—
सौंधी सी आवाज किसकी
मंत्र सा कुछ गा गई है।

× × ×

कौन मुझ को—
बिना गाये दे गया है
छोर गीतों के।

यदि यह गीत है तो फिर गीत क्या नहीं है। नई कविता के गीत या तो लोकधुनों पर चलते हैं या सिनेमा के गीतों की धुनों पर। सिने-गीतों में भी आज कोई लय नहीं रहती। किसी भी गद्य-पंक्ति को पश्चिमी धुन पर गा दिया जाने लगा है।

आज देश में स्वतंत्रता का अर्थ सर्वत्र उच्छृंखलता लिया जाने लगा है और नई कविता उसी उच्छृंखलता का ही व्यक्त स्वरूप है। इसमें अपनी परंपरा के प्रति विद्रोह है, किंतु विदेशी परंपरा का अंधानुकरण है। वस्तु और अभिव्यक्ति दोनों में विदेशी जूठन को स्वीकार कर लिया गया है। वस्तुतः नई कविता में नवीनता जैसी कोई चीज नहीं।

कविता का स्थान हृदय है मस्तिष्क नहीं। मस्तिष्क विकृत होने पर भी मानव जी सकता है, पर हृदय के विकृत होने पर नहीं। अतः हृदय (भावना) के अभाव में केवल बुद्धिप्रधान कविता मृत-तुल्य है। छायावाद में भावना की प्रधानता थी, प्रगतिवाद में बुद्धि-तत्त्व को प्रधानता मिली, प्रयोगवाद में बुद्धितत्त्व ने भावतत्त्व को पराभूत कर दिया और आज की कविता का तो बुद्धि से कोई सम्बन्ध है इस में भी संदेह है। जीवन से दूर भटक जाने के कारण आज की कविता में 'कवित्व' ही नहीं रह गया है। इस कविता से तो प्राचीन चित्रकाव्य में अधिक चमत्कार है। यही कारण है कि एक दशक के भीतर ही देशभर के सहृदय पाठक कविता से ऊब गये हैं—कविता में उन्हें कोई 'रस' नहीं प्रतीत होता।

आज की सभी कविताएँ 'नई कविता' के भीतर नहीं आतीं। जहाँ कोई विषय है, अनुभूति है, जहाँ कविता जनजीवन से सम्बन्ध रखती है, जहाँ भाषा में शब्द अर्थ-सहित होता है वहाँ मुक्तछंद में भी, शैली की नवीनता होने पर भी कवित्व होता है। और आज ऐसे अनेक कवि हैं जो वस्तुतः कविता कर रहे हैं—चाहे पुरानी परंपरा के अनुयायी हों या सर्वथा नई शैली के स्रष्टा। ऐसी कविता में 'रस' होता है और वह कवि-गोष्ठियों में मान भी पाती है। श्री नलिन विलोचन शर्मा की एक छोटी सी कविता 'अर्जीअकबर खाँ' का अवलोकन कीजिए:—

सरोद पर तुमने था बजाया,
मैं समझा नहीं। मैंने देखा।
पीतल और लोहे से
तुमने मधु निचोड़ा,
सारा कड़वापन दूर हो गया,
मधु विंदुत होकर बँट गया।

कविता छोटी किंतु हृदयस्पर्शी है। थोड़े से शब्दों में अलीअकबर खां के मधुनिष्यंदी सरोद का प्रभाव व्यक्त कर दिया है। पर यह 'विंदुत' क्या बला है? डा० जगदीशचंद्र जोशी की 'हिरोशिमा की आवाज', 'दिल्ली जंक्शन', 'चीन' आदि जीवन की एक छोटी घटना, या क्षणिक दृश्य की वास्तविक एवं हृदयस्पर्शी झाँकियाँ हैं। पर ऐसी कविताएँ अंगुलियों पर गिनी जा सकती हैं। नये कवियों में कवि-प्रतिभा का अभाव नहीं है, उनमें अभाव है चिन्तन और मनन का। उनका सब से बड़ा शत्रु है उनका अहंभाव जो उन्हें सही अर्थों में कवि बनने नहीं देता।

कविता में देशकाल का प्रभाव पड़ता ही है; पर यह नहीं हो सकता कि भारत का कवि फारस, इंग्लैंड, रूस या अमेरिका के राग अलापे। सच्ची अनुभूति के अभाव में उस कविता में अनुकरण मात्र हो सकता है सच्चा कवित्व नहीं आ सकता। नरगिस सी आँखें, सुराहीदार गर्दन तो भारत की चीज नहीं। इस प्रकार के उपमानों का साधारणीकरण संभव नहीं। इसलिये नई कविता का यह विदेशी पौदा भारत की जलवायु में पनप सकेगा इसमें संदेह है। जो कविता भारत की, भारत के निवासियों की, भावना को नहीं गा सकती, नहीं जगा सकती वह भारतीय कविता का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। यही कारण है कि उर्दू कविता कभी भारतीय नहीं हो सकी, क्योंकि उसने भारतीय-जीवन का चित्रण नहीं किया। हिंदी और अन्य भाषाओं ने रूढ़ियों को क्रमशः छोड़कर नवीनता की ओर कदम बढ़ाये; पर उर्दू अपनी रूढ़ियों को आसानी से नहीं छोड़ सकी।

इसके दो स्पष्ट कारण थे—उस्तादों का कठोर नियंत्रण और मजहब की कट्टरता। इसलिए उर्दू का शायर परंपरा का उल्लंघन कम ही कर पाया ! गुल, बुलबुल, नरगिस, साकी, दवेजमजम के बिना वह शायरी कर ही नहीं सकता—यद्यपि उसने तो क्या उसके कई पुरखों ने तक शायद ही इन्हें देखा हो। मजहब को ऊपर मानने के कारण राष्ट्रीयता की भावना भी उर्दू में भूले-भटके ही पाई जाती है। यही कारण है कि उर्दू कविता में इतनी बड़ी सामाजिक और राजनीतिक उथलपुथल का प्रभाव नहीं के बराबर पड़ा। उर्दू का शायर आज भी आशिक-माशूकों की तंग गली में घूमता है। कविता के पुराने आलंबन, पुरानी उपमाएँ, और उनके पुराने प्रेरणा-स्रोत लैला-मजनू, शीरीं-फरहाद, चमन, बहार, मैखाना आज भी ज्यों के त्यों हैं। फिर भी नये शायर नये प्रयोगों की ओर बढ़ते दिखाई दे रहे हैं, कविता के नये आधार और मूल्य खोजने की आवश्यकता समझने लगे हैं। भाषा के सम्बन्ध में भी वे अपेक्षाकृत उदार होने लगे हैं—

कीजे न अमील उर्दू का सिंगार
अब ईरानी तमलीहों से;
पहनेगी विदेशी गहने क्यों यह
बेटी भारत माता की।

वह अपनी शायरी को अरबी-फारसी शब्दों से नहीं लादना चाहता, न अब हिंदी से उसका कोई द्वेष है:

झलकती रहे ये अशोका की लाट
ये गोकुल की गलियाँ ये काशी के घाट
लुटाती रहे अपने नयनों का मद
ये सुबहे बनारस ये शामे अवध।

ऐसे प्रयत्न सराहनीय हैं, यद्यपि ये छुटपुट ही हो रहे हैं और परंपरागत मूल्यों को महत्त्व देनेवाले शायरों के सामने इनका कोई मूल्य नहीं है। दरबारी शायरी की गद्दी अभी तक सुरक्षित है।

× × ×



सारांश :

आधुनिक कविता के प्रारंभिक रूप की तुलना नदी की बाढ़ से की जा सकती है। बाढ़ के बाद निर्मल जल के रूप में जो शेष बच जाता है उसी से नदी के वास्तविक रूप का पता लग सकता है। छायावाद की बाढ़ में छायावाद का असली रूप सामने नहीं आया। उस बाढ़ में न जाने कितना कुछ था—सभी गिनेचुने अभ्यस्त शब्दों में प्रिया-राग गाने वाले थे, सभी अनंत की दौड़ लगाते थे। पर समय की बाढ़ में वे सब न जाने कहाँ बह गये। बाढ़ समाप्त होते ही स्वच्छ जल के रूप में पंत, प्रसाद, निराला ही शेप बच पाये और इस त्रिवेणी के निर्मल प्रवाह में जो कुछ हमें दिखाई पड़ा वह बहुत कुछ था। पर प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की बाढ़ में मरुस्थल की नदी की भाँति सब कुछ बह गया—कुछ भी हाथ न लगा। आज नई कविता की बाढ़ जोरों पर है। हो सकता है कि वर्षा के बाद शरद में कुछ शेष रह जाय और यह भी संभव है कि वर्षा समाप्त होते ही दुर्दुर-ध्वनि भी समाप्त हो जाय। यह तो भविष्य ही बतलायेगा।

परिचय

श्री ओमानंद रू० सारस्वत—(जन्म: संवत् १९८९ पिलानी – राजस्थान) अन्तर्मुख स्वभाव एवं एकान्त प्रकृति के श्री ओमानंद सारस्वत पिलानी के निवासी हैं। राजस्थान विश्वविद्यालय से आपने हिंदी में एम. ए. की उपाधि प्राप्त की और प्रथम श्रेणी में सर्वोच्च स्थान पाया। श्री सारस्वत कुशल कवि, कहानीकार एवं निबन्धकार हैं। अभी तक आपके 'चिता' एवं 'आलोक-पथ' नामक दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। राजस्थान विश्वविद्यालय के अंतर्गत आप 'राजस्थानी दोहा साहित्य' पर शोध कर रहे हैं। इन दिनों आप नलिनी एवं अरविंद महाविद्यालय में हिंदी विभाग के अध्यक्ष हैं। ॐ

श्री काकुभाई दुर्गाशंकर दवे—(जन्म: ई. १९३०, [illegible]) आपने कलकत्ता संस्कृत साहित्य परिषद् से 'काव्यतीर्थ', काशी राजकीय संस्कृत महाविद्यालय एवं [illegible] मंडल से 'साहित्याचार्य'; बृहद् गुजरात संस्कृत परिषद् से 'वेदान्त शास्त्री' और 'आयुर्वेद शास्त्री', भारतीय विद्याभवन से 'व्याकरण-शास्त्री' और 'आचार्य'; 'महामहोपाध्याय,' 'ज्योतिर्विद् भूषण,' 'व्याकरण मनीषी', 'आयुर्वेदाचार्य' आदि अनेक उपाधियाँ प्राप्त की हैं। इस प्रकार श्री दवे का अध्ययन व्यापक और परिपक्व प्रतीत है। कुमार-सम्भव के तृतीय और चतुर्थ सर्गों का गुजराती अनुवाद प्रकाशित हो चुका है। 'कल्याण' में आपके निबंध प्रकाशित होते रहते हैं। आजकल आप नलिनी एवं अरविंद महाविद्यालय के हिंदी संस्कृत विभाग में हैं। ॐ

श्री कीर्तिनाथ दत्तात्रय कुर्तकोटि—(जन्म: ई. १९२८, [illegible]) [illegible] निवासी कुर्तकोटि ने कर्नाटक विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम. ए. किया है। आप कन्नड़ साहित्य के सुपरिचित लेखक हैं। अंग्रेजी, कन्नड़ तथा संस्कृत तीनों भाषाओं पर आपका समान अधिकार है। आलोचक एवं कवि की प्रतिभा तथा पूर्व और पश्चिम के काव्यशास्त्र के विशद अध्ययन ने श्री कुर्तकोटि को कन्नड़ के प्रथम पंक्ति के साहित्यकारों में स्थापित कर दिया है। आप कवि, निबंध-लेखक, आलोचक तथा नाटककार हैं। कन्नड़ में आपके '[illegible]' ([illegible]),

'आमनि' (नाटक), कन्नड-साहित्यावलोकन प्रकाशित हो चुके हैं। 'आमनि' को कर्नाटक सरकार ने ५०० रु. देकर पुरस्कृत किया है। १८०० पृष्ठों के विशाल ग्रंथ 'नडेदु वद दारि' का आपने संपादन किया है। आजकल आप विट्ठलभाई पटेल महाविद्यालय में अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष हैं। ※

श्री जशवंत शेखडीवाला :—(जन्म : सं. १९८८, पेटलाद-गुजरात) श्री शेखडीवाला ने बड़ौदा विश्वविद्यालय से गुजराती में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। श्री शेखडीवाला की अभिरुचि नाटक, कहानी, उपन्यास तथा पश्चिमी विवेचन-शास्त्र में है। आपके कई एकांकी, कहानियाँ तथा आलोचनात्मक लेख गुजराती पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं और आप गुजराती के एक उदीयमान आलोचक माने जाते हैं। इन दिनों आप सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ के गुजराती विभाग में प्राध्यापक हैं और गुजराती के नाट्य साहित्य पर शोध कर रहे हैं।

श्री नागेन्द्रनाथ उपाध्याय :—(जन्म : सं. १९८९, जौनपुर-उत्तरप्रदेश) आपने काशी विश्वविद्यालय से हिंदी में प्रथम श्रेणी में एम. ए. की उपाधि प्राप्त की। श्री उपाध्याय ने 'नाथ और सिद्ध साहित्य' का विधिवत् एवं व्यापक अध्ययन किया है। 'तांत्रिक बौद्ध-साधना और साहित्य' नामक पुस्तक पर उत्तरप्रदेश की सरकार ने आपको पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया है। आज-कल आप नलिनी एवं अरविंद महाविद्यालय में हिंदी विभाग में प्राध्यापक हैं तथा 'नाथ और संत साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध कर रहे हैं। ※

श्री प्रभाचंद्र जैन—(जन्म : सं. १९८७, मंगरूर) मंगरूर निवासी श्री जैन ने लखनऊ विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में एम. ए. किया। एम. ए. की उपाधि के लिए आपने 'सामाजिक संघटन का मनोविज्ञान' नामक प्रबंध प्रस्तुत किया था। आजकल आप बिड़ला विश्वकर्मा महाविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं। ※

श्री भूपतिराम साकरिया—(जन्म : सं. १९८३, बालोतरा-राजस्थान) आपने राजपूताना विश्वविद्यालय से एम. ए. और बी. एड् की उपाधियाँ प्राप्त कीं। आजकल आप विट्ठलभाई पटेल महाविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं और 'मंगल काव्यों की परंपरा और रुक्मिणी मंगल' विषय पर शोध कर रहे हैं। ※

श्री मोहनवल्लभ पंत—(जन्म: सं. १९६२–उत्तर प्रदेश) आपने काशी विश्वविद्यालय से हिंदी में एम. ए. और पी. टी. तथा आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। प्रभावशाली वक्तृत्व एवं रोचक अध्यापन पंतजी की विशेषताएँ हैं। पंतजी एक विद्वान् अध्यापक, सफल आलोचक एवं प्रतिभावान् निबंधलेखक हैं। अध्यापन के विविध क्षेत्रों में लगभग ३४ वर्षों का अनुभव है तथा कई विद्यार्थी आपके निर्देशन में पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। अभी तक आपकी गुर्जररत्न, अन्योक्तिकल्पद्रुम, आलोचनाशास्त्र, स्मृतियाँ, भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच आदि एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आजकल आप सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। ※

डा. रामेश्वरलाल खंडेलवाल—(जन्म: सं. १९८६, नवलगढ़–राजस्थान) आपने काशी विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. और आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। आप हिन्दी के जाने माने कवि एवं आलोचक हैं। अभी तक आप के 'प्रथम किरण', 'पूर्वदर्शन', 'हिमालय' नामक कविता-संग्रह तथा 'कविता में प्रकृति-चित्रण' (एम. ए. का प्रबंध) आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौंदर्य (पी-एच. डी. का शोधप्रबंध) और [illegible] प्रभात नामक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। इन दिनों आप सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ के हिंदी विभाग में 'रीडर' हैं। ※

श्री सुरेशचंद्र त्रिवेदी—(जन्म: सं. १९८७, बड़ौदा) आपने काशी विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. किया। इन दिनों आप सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक हैं और 'रवीन्द्र का भौतिकवाद और हिन्दी कविता' पर आप शोध कर रहे हैं। ※

श्री पवनकुमार मिश्र, एम. ए.
हिंदी विभाग,
विट्ठलभाई पटेल महाविद्यालय

'आमनि' (नाटक), कन्नड-साहित्यावलोकन प्रकाशित हो चुके हैं। 'आमनि' को कर्नाटक सरकार ने ५०० रु. देकर पुरस्कृत किया है। १८०० पृष्ठों के विशाल ग्रंथ 'नडेदु वद दारि' का आपने संपादन किया है। आजकल आप विट्ठलभाई पटेल महाविद्यालय में अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष हैं। ※

श्री जशवंत शेखडीवाला:—(जन्म: सं. १९८८, पेटलाद-गुजरात) श्री शेखडीवाला ने बड़ौदा विश्वविद्यालय से गुजराती में एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। श्री शेखडीवाला की अभिरुचि नाटक, कहानी, उपन्यास तथा पश्चिमी विवेचन-शास्त्र में है। आपके कई एकांकी, कहानियाँ तथा आलोचनात्मक लेख गुजराती पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं और आप गुजराती के एक उदीयमान आलोचक माने जाते हैं। इन दिनों आप सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ के गुजराती विभाग में प्राध्यापक हैं और गुजराती के नाट्य साहित्य पर शोध कर रहे हैं।

श्री नागेन्द्रनाथ उपाध्याय:—(जन्म: सं. १९८९, जौनपुर—उत्तरप्रदेश) आपने काशी विश्वविद्यालय से हिंदी में प्रथम श्रेणी में एम. ए. की उपाधि प्राप्त की। श्री उपाध्याय ने 'नाथ और सिद्ध साहित्य' का विधिवत् एवं व्यापक अध्ययन किया है। 'तान्त्रिक बौद्ध-साधना और साहित्य' नामक पुस्तक पर उत्तरप्रदेश की सरकार ने आपको पुरस्कार द्वारा संमानित किया है। आजकल आप नलिनी एवं अरविंद महाविद्यालय में हिंदी विभाग में प्राध्यापक हैं तथा 'नाथ और संत साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर शोध कर रहे हैं। ※

श्री प्रभाचंद्र जैन—(जन्म: सं. १९८७, मंगरूर) मंगरूर निवासी श्री जैन ने लखनऊ विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में एम. ए. किया। एम. ए. की उपाधि के लिए आपने 'सामाजिक संघटन का मनोविज्ञान' नामक प्रबंध प्रस्तुत किया था। आजकल आप बिड़ला विश्वकर्मा महाविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं। ※

श्री भूपतिराम साकरिया—(जन्म: सं. १९८३, बालोतरा-राजस्थान) आपने राजपूताना विश्वविद्यालय से एम. ए. और बी. एड् की उपाधियाँ प्राप्त कीं। आजकल आप विट्ठलभाई पटेल महाविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं और 'मंगल काव्यों की परंपरा और रुक्मिणी मंगल' विषय पर शोध कर रहे हैं। ※

श्री मोहनवल्लभ पंत—(जन्म: सं. १९६२–उत्तर प्रदेश) आपने काशी विश्वविद्यालय से हिंदी में एम. ए. और बी. टी. तथा आगरा विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। प्रभावशाली वक्तृत्व एवं प्रभावक अध्यापन पंतजी की विशेषताएँ हैं। पंतजी एक विद्वान् अध्यापक, सफल अभिनेता एवं प्रतिभावान् निर्देशक हैं। अध्यापन के विविध क्षेत्रों में आपका २४ वर्षों का अनुभव है तथा कई विद्यार्थी आपके निर्देशन में पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। अभी तक आपकी [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], भारतीय नाट्यशास्त्र और रंगमंच आदि एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आजकल आप सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। ⁂

डा. रामेश्वरलाल खंडेलवाल—(जन्म: सं. १९७६, [illegible]–राजस्थान) आपने काशी विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. और आगरा विश्वविद्यालय से पीएच. डी. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। आप हिन्दी के जाने माने कवि एवं आलोचक हैं। अभी तक आप के 'प्रथम किरन', 'धूपछाँह', 'दिनान्त' नामक कविता-संग्रह तथा 'कविता में प्रकृति-चित्रण' (एम. ए. का प्रबंध) आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौंदर्य (पीएच. डी. का शोधप्रबंध) और [illegible] नामक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। इन दिनों आप सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ के हिंदी विभाग में 'रीडर' हैं। ⁂

श्री सुरेशचंद्र त्रिवेदी—(जन्म: सं. १९८७, बड़ौदा) आपने काशी विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम. ए. किया। इन दिनों आप सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक हैं और '[illegible] का [illegible] और हिन्दी कविता' पर आप शोध कर रहे हैं। ⁂

श्री पवनकुमार मिश्र, एम. ए.
हिंदी विभाग,
विठ्ठलभाई पटेल महाविद्यालय

भूल-सुधार

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	६	१९५४	१९१४
१२	९	युग	युंग
२२	७	मानव	कवि
२२	२४	विश्वास	अविश्वास
४२	२१	अनीश्वरवादी	अज्ञेयवादी (ऍग्नॉस्टिक)
५०	५	प्रतिकाव्य (ओड)	प्रतिकाव्य (पॅरोडी)
५५	१५	प्रणय और प्रकृति के	प्रणय के
५६	१२-१५	इन उदाहरणों से....लिखा है	यह अवतरण संपादकीय पाद-टिप्पणी है, लेखक का कथन नहीं।
१०१	२	सभारे	समीर
१०३	१०	अक्षरांति	अक्षरांत
१०४	७	रा. जा. वडे	राजावडे
१०८	१४	राजस्थान ने अपनी उदारता और फलेवर की श्रीवृद्धि....	राजस्थान ने अपनी उदारता और दूरदर्शिता का परिचय दिया है! किंतु राष्ट्रभाषा हिंदी के कलेवर की श्रीवृद्धि....
१०९	२०	किरणा	किणरा
		मावरी	वापरी
१०९	२७	प्रशक्ति	प्रशस्ति
१११	१६	खेतदान	रेवतदान
११५	२७	अमरदान	ऊमरदान
११६	२	छप्पन रौ	छप्पनरो फाळ

